मन्दिर प्रबन्धन

कनिष्ठ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 2.5

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

मन्दिर प्रबन्धन कनिष्ठ सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखकगण

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा, ज्योतिषाचार्य

एम०ए०, एम० फिल०, पी०एचडी०(शैक्षिक सहायक)

श्री त्रिभुवन शर्मा

एम०एससी०बीएड(शिक्षक विज्ञान)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : डॉ. अभय कुमार पाण्डेय

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण :2024

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

मन्दिर प्रबन्धन कनिष्ठ सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

वेद शिल्पशास्त्र के स्रोत हैं। देवताओं एवं मानवों को सदैव प्रसन्नता की अनुभूति हो और उनके मन आनन्द की अनुभूति से प्रफुल्लित हो जाएँ, ऐसे स्थान को देव प्रासाद या मन्दिर कहते हैं। प्रसादों की उत्पत्ति का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है- जो परमात्मा संग्राम करने वाले वीरों को युद्ध में यथावत् नियोजित करता है तथा शारीरिक एवं आत्मिक दोनों प्रकार की पुष्टियों का सृजन करता है, मैं भक्त उस परमेश्वर की स्तुति तथा आवाहन करता हूँ। वह हमें कष्ट से मुक्त कराएँ अर्थात् परमात्मा की जो उपासना और प्रार्थना करता है उसकी परमात्मा रक्षा करते हैं।

यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि।

स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः॥ (अथर्व4.24.7)

ऐश्वर्य चाहने वाले लोग जिस परमात्मा की प्रीति की कामना करते हैं, जिस दृष्टिवाले परमात्मा को दान स्थान, संग्राम में शूर लोग पुकारते हैं। जिसमें अन्न एवं पराक्रम प्राप्त होता है। वह हमें कष्ट से मुक्त कराते हैं।

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ।

यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥(अथर्व4.24.5)

भारतीय स्थापत्य की नागर एवं द्राविड़ प्रमुख शैलियाँ हैं। इन दोनों के मिश्रण से वेसर शैली का निर्माण हुआ है। नागर शैली के मन्दिरों का निर्माण हिमालय से विन्ध्य पर्वत के मध्य के राज्यों में होता है या फिर निर्मित देवालय हैं। द्राविड़ शैली के प्रासाद या विमान दक्षिण भारत में होता है। वेसर शैली के विन्ध्य के मध्य राज्यों के साथ- साथ प्रायः सर्वत्र पाए जाते हैं।

शास्त्रकारों का मत है कि मन्दिर निर्माण करने से अक्ष्यलाभ प्राप्त होता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा कि जैसा फल यज्ञयागादि के करने से प्राप्त होता है वैसा ही फल देवप्रासाद के निर्माण करने से भी होता है। यथा-

इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता।

देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ।। (बृ.सं. प्रा.ल.अ. 2)

शिक्षार्थियों के लिए मन्दिर के ज्ञान के साथ- साथ पञ्चाङ्ग ज्ञान, विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धतियों के ज्ञान एवं मन्दिर में विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं का प्रबन्धन करने में मन्दिर प्रबन्धन कनिष्ठ सहायक की यह पुस्तक अतीव सहायक होगी।

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा

इकाई 1 : कौशल भारत मिशन एवं मन्दिर प्रबन्धन कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय

1.1. **राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन** - 15 जुलाई, 2015 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का शुभारंभ किया। कुशल भारत, भारत सरकार की एक पहल है जो कौशल प्रशिक्षण के द्वारा देश के युवाओं का व्यक्तिगत विकास कर उनको सशक्त उद्यमी और अधिक उद्यमशील बनाकर उनका तथा देश के आर्थिक विकास को उन्नत करके कुशल भारत और समृद्ध भारत बनाने के लिए शुरू किया गया है। राष्ट्रीय कौशल मिशन के अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी हैं।

भारत की 65% युवा आबादी को कौशल विकास के माध्यम से उद्यमशील बनाकर देश को एक वैश्विक शक्ति बना सकते हैं। अतः कुशल भारत सम्पूर्ण देश के 40 क्षेत्रों में पाठ्यक्रम प्रदान करता है जो राष्ट्रीय कौशल अर्हता मानक के तहत उद्योग और सरकार दोनों द्वारा मान्यता प्राप्त मानकों से जुड़े हैं। यह पाठ्यक्रम एक शिक्षार्थी को कार्य के व्यावहारिक समन्वय के साथ-साथ उसको तकनीकी रूप से उद्यम करने में सक्षम बनाता है।

1.2. **राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन के उद्देश्य**

- कौशल विकास का उद्देश्य युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण के द्वारा आजीविका प्रदान करना है।
- यह कौशल औपचारिक शिक्षा के साथ कौशल प्रशिक्षण के द्वारा उद्यमिता क्षमता में गुणवत्तापूर्ण परिणाम लाता है।
- कौशल विकास राष्ट्रीय मानकों के तहत प्रौद्योगिकी के माध्यम से कार्य क्षमता को बढ़ाना है।
- युवाओं का व्यक्तिगत विकास के साथ- साथ देश की आर्थिक वृद्धि को शिखर पर ले जाना है।

1.3. **कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्रालय-**

कौशल विकास के द्वारा युवाओं की आजीविका क्षमता को बढ़ाने हेतु केन्द्र सरकार ने कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय (एमएसडीई) का 26 मई 2014 को गठन किया। यह मंत्रालय कौशल विकास के समस्त प्रयासों का समन्वय करने, कुशल जनशक्ति की मांग और आपूर्ति के बीच के अंतर को दूर करने, व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण ढांचे का निर्माण करने, कौशल उन्नयन करने, न

केवल मौजूदा रोजगारों हेतु, बल्कि सृजित की जाने वाली नौकरियों के लिए भी नए-नए कौशलों का निर्माण करने के लिए अहर्निशम प्रयासरत है।

1.4. **मंत्रालय का उद्देश्य-** 'कुशल भारत' के दृष्टिकोण के लक्ष्यों को प्राप्त करने और उच्च मानकों के साथ बड़े पैमाने पर कुशल बनाना है। इन पहलों में इसकी सहायता करने के लिए निम्न संस्थाएँ कार्यरत हैं - प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी), राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीईटी), राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी), राष्ट्रीय कौशल विकास निधि (एनएसडीएफ़) और 37 क्षेत्र कौशल परिषदें (एसएससी) के साथ-साथ 33 राष्ट्रीय कौशल प्रशिक्षण संस्थान [एनएसटीआई/एनएसटीआई (महिला)], डीजीटी के अंतर्गत लगभग 15000 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) और एनएसडीसी के साथ 187 प्रशिक्षण भागीदार पंजीकृत हैं। मंत्रालय ने कौशल विकास केंद्रों, विश्वविद्यालयों और इस क्षेत्र के अन्य गठबन्धनों के साथ कार्य कर रहा है। इनके अतिरिक्त, संबंधित केंद्रीय मन्त्रालयों, राज्य सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, उद्योग एवं गैर-सरकारी संगठनों के साथ कौशल विकास को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कार्य कर रहा है तथा देश के कार्यबल को पुन: सुदृढ़ और सक्रिय कर रहे हैं; तथा युवाओं को घरेलु उद्यमों से लेकर अंतरराष्ट्रीय रोजगार और विकास के हेतु तैयार कर रहें हैं।

1.5. **प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी)-** व्यावसायिक प्रशिक्षण, जिसमें महिलाओं का व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित कार्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विकास तथा समन्वय हेतु कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय में प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीटी) एक शीर्षस्थ संगठन है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान राज्य सरकारों या संघराज्य क्षेत्रों के प्रशासनों के प्रशासनिक तथा वित्तीय नियन्त्रणाधीन हैं। डीजीटी भी अपने सीधे नियंत्रण में क्षेत्रीय संस्थानों के माध्यम से कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण योजनाएँ संचालित करता है। राष्ट्रीय स्तर पर इन कार्यक्रमों का विस्तार करने की जिम्मेदारी विशेषतः सामान्य नीतियों, सामान्य मानक तथा प्रक्रियाओं, अनुदेशकों के प्रशिक्षण तथा व्यवसाय परीक्षण सम्बन्धित क्षेत्र में लेकिन औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की दैनन्दिन व्यवस्था की जिम्मेदारी राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासनों की है।

1.6. **प्रशिक्षण महानिदेशालय मुख्य कार्य-**

- व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु समग्र नीतियाँ, मानदण्ड तथा मानक तैयार करना।

- शिल्पकारों तथा शिल्प अनुदेशकों के मामले में प्रशिक्षण के प्रशिक्षण सुविधाओं में विविधता लाना, उन्हें अद्यतन करना तथा उनका विस्तार करना।
- विशेष रूप से स्थापित प्रशिक्षण संस्थानों पर विशिष्ट प्रशिक्षण तथा अनुसंधान की व्यवस्था तथा आयोजन करना।
- शिक्षुता अधिनियम 1961 के अंतर्गत (**शिक्षुता संशोधन नियम** 2019) शिक्षुओं के प्रशिक्षण का पैमाना लागू करना उसका नियमन तथा विस्तार करना
- महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना
- व्यावसायिक मार्गदर्शन तथा रोजगार परामर्श प्रदान करना।
- अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों तथा दिव्यांगों की वेतन रोजगार तथा स्व रोजगार हेतु सामर्थ्य बढ़ाने में सहायता करना।

1.7. राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद(एनसीवीईटी) -

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद की स्थापना भारत सरकार द्वारा 5 दिसम्बर 2018 को एक नियामक निकाय के रूप में की गई थी। यह 1 अगस्त 2020 से एनसीवीईटी मानकों को स्थापित करने, व्यापक नियमों को विकसित करने और व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल पारिस्थितिकी संस्थाओं, मूल्यांकन एजेंसियों और कौशल सूचना प्रदाताओं को मान्यता देता है और उनके कामकाज की निगरानी करता है। इस प्रकार इसका उद्देश्य अत्यधिक कुशल जनशक्ति की उपलब्धता को सुविधाजनक बनाना, रोजगार क्षमता में सुधार करना और भारतीय अर्थव्यवस्था के त्वरित विकास में योगदान देना है।

1..8. राष्ट्रीय कौशल विकास के प्रभाव-

- प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) से अब तक लगभग 1.37 करोड़ लोगों को सक्षम बनाकर नए कुशल भारत के लिए तैयार किया गया है।
- देश में कौशल विकास अब तक 720 से अधिक प्रधानमंत्री कौशल केंद्र स्थापित किए जा चुके हैं। ये शिक्षाशास्त्र एवं प्रौद्योगिकी के लाभ के अत्याधुनिक कौशल केंद्र हैं।

- एमएसडीई, पीएमकेवीवाई के तहत इसके पूर्व शिक्षण मान्यता (आरपीएल) कार्यक्रम के माध्यम से अनौपचारिक साधनों द्वारा प्राप्त कौशल को मान्यता देता है और प्रमाणित करता है, जिससे असंगठित क्षेत्र को संगठित अर्थव्यवस्था में लाना एक बड़ा परिवर्तन है। इस कार्यक्रम के तहत अब तक 50 लाख से अधिक लोग प्रमाणित और औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त कर चुके हैं।
- कुशल भारत देश में सभी कौशल विकास कार्यक्रमों में सामान्य मानदंडों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदारी लेता है ताकि वे सभी मानकीकृत और एक समान हों। व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण में बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए कुशल भारत के तहत आईटीआई इकोसिस्टम को भी शामिल किया गया है।

कुशल भारत में प्रशिक्षित युवा अब देश लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर की मांगों को भी पूरा करेंगे क्योंकि किसी भी राष्ट्र की सफलता सदैव शिक्षित एवं प्रशिक्षित लोगों पर निर्भर करती है और कुशल भारत इस युवा भारतीयों के लिए आत्मनिर्भर बनने का निश्चित अवसर प्रदान करेगा। जिससे भारत एक कुशल भारत और श्रेष्ठ भारत के रूप में विकसित होगा जहाँ सभी के लिए आजीविका और प्रतिष्ठा होगी।

1.9 मंदिर प्रबन्धन कनिष्ठ सहायक की भूमिका का परिचय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास करना है। देशों को इस समय कुशल एवं सक्षम जनशक्ति की आवश्यकता है। जिस आवश्यकता को इस मॉड्यूल योग्यता आधारित पाठ्यक्रम से पूर्ति की जा सकती है। 64 कलाओं में से मन्दिर प्रबन्धन कौशल न केवल भारतीय सांस्कृतिक दैनिक पूजादि से सम्बन्धित है बल्कि विभिन्न विषयों जैसे अध्ययन- अध्यापन, मौलिक मूल्य, सदाचार, शास्त्रार्थ, पचाङ्ग, संस्कार, सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं और प्रथाओं की मूल समझ प्रदान करने के लिए शुरू किया गया है। यह छात्रों के कौशल और व्यावसायिक आवश्यकताओं को भी पूरा करेगा तथा कौशल आधारित शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से रोजगार क्षमता में सुधार भी करेगा।

कनिष्ठ सहायक की भूमिका-

- उस संस्कृति एवं वातावरण की समझ विकसित करना जिसमें हम रहते हैं और प्रबन्धन से सम्बन्धित विभिन्न गतिविधियों का विकास करना है।

- विभिन्न व्यवस्थाओं की सहज व्यवस्था एवं पंचाग के सिद्धांतों और प्रक्रियाओं का ज्ञान प्रदान करना।
- कंप्यूटर सहित तकनीकी उपकरणों और प्रबन्धन में इसके अनुप्रयोग का ज्ञान प्रदान करना।
- शिक्षार्थियों को दर्शनार्थियों की उचित व्यवस्था, पूजा सामग्री, दर्शनार्थियों के लिए उचित प्रबन्धन करना, नैतिक मूल्य, शिक्षा का प्रचार- प्रसार और उसके बारे में उनकी समझ विकसित करना।
- उद्यमिता की भावना को प्रोत्साहित करना और शिक्षार्थी को स्वरोजगार में प्रवेश कराने के लिए गुण विकसित कराना है।

मुख्य विशेषताएँ-

- यह पाठ्यक्रम प्रबन्धन, मन्दिर का विकास, संस्कृति का विकास और व्यवसाय, सम्बन्धित गतिविधियों को करने के लिए आवश्यक मूलभूत कौशल विकसित करने में मदद करेगा।
- यह पाठ्यक्रम व्यावहारिक प्रशिक्षण, विश्लेषणात्मक, व्यवस्थापन, देवस्थान विभागों जैसी समस्याओं को सुलझाने की योग्यता और कौशल सिखाने पर अधिक बल देगा।

सक्रिय गतिशीलता-

इस पाठ्यक्रम में भाग लेकर छात्र विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के प्रबन्धन विभाग, देवस्थान विभाग तथा समाज के लिए सहायक होंगे।

इकाई: 2, मन्दिर का सामान्य परिचय

इस इकाई में- संस्कृत वाङ्मय में मन्दिर के लिए देवालय, देवायतन, देवकुल, देवगृह आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। उत्तरभारत में मंदिरों के लिए 'प्रासाद' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। गुप्त-अभिलेखों में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है, जबकि दक्षिण भारत के मन्दिरों के लिए 'विमान', 'हर्म्य' तथा 'प्रासाद' शब्द उल्लेख है। वेदों में भी 'हर्म्य' शब्द का प्रयोग मिलता है।

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म।

यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः।। (ऋग्वेद-5.32.5)

अन्य भाषाओं में जैसे- तमिल में कोविल, तेलुगु में गुडी-आलयम, कन्नड में देवस्थान का वर्णन मिलता हैं। अर्थात् वास्तुशास्त्र और वेदों में मन्दिर गृह के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

2.1. मन्दिर क्या है? प्राचीन काल से मन्दिरों का प्रचलन है लेकिन भारत में मन्दिर स्थापत्य कला का प्रायः अधिकांश विकास गुप्तकाल से माना जाता है। अतः स्पष्ट रूप से शिलालेखों एवं इतिहास से प्रतीत होता हैं कि देवालय स्थापत्यकला का विकास धार्मिक आध्यात्मिक चेतना से ही हुआ होगा क्योंकि मन्दिरों में सांस्कृतिक ,सामाजिक और लोकोपकारक अनेक कार्य ही होते हैं यथा -धार्मिक, सामाजिक विषयों पर शास्त्रार्थ, ज्ञान एवं विज्ञान की शिक्षा प्रदान करना, मानवों की समस्याओं के समाधान के अनेक अलौकिक उपायों पर चिन्तनादि। इतिहास के प्रमाण से कह सकते हैं कि समाज में इसकी उच्च मान्यता थी एवं है। काण्व संहिता (विंशति 3-4), मैत्रायणी-संहिता (तृतीय 2-45), श0 ब्रा0 (सप्तम 2 21-14) आदि में निदष्ट एवं अकुरार्पण की प्रक्रिया प्राथमिक मानी गई है। प्रासाद-निर्माण का भी अभिन्न अङ्ग है।उपरान्न वेदि-भूमि का द्वादश वृषभों के द्वारा कर्षण एवं अकुरारोपण का उल्लेख है। अग्नि-चयन में महावेदी के निर्माण एव यज्ञीय भूमि पर अंकुरारोपण से लगाकर 'मङ्गलाकर' की प्रक्रिया पूजा-वास्तु की सदैव अभिन्न अङ्ग रही (वामिकागम 31.18) । अतः उसके लिए उचित भूखण्ड का चयन मृत्तिका के परीक्षण एवं दिशा के आधारों पर होता है। देवालय निर्माण के लिए वन, जल व उद्यान से युक्त भूमि शुभ मानी जाती एवं वहीं देवता निवास करते हैं जैसा कि आचार्य वराहमिहिर के वचन हैं-

वनोपान्तनदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु ।

रमन्ते देवता नित्यंपुरेषूद्यानवस्तु च ।।(बृ.सं. प्रा.ल.अ. 8)

अर्थात् देवता सरोवर, निर्झर,पर्वतादि के निकट निवास करते हैं । वर्तमान में दृषि डाले तो अनेक क्षेत्रों वन,नदीपर्वतादि स्थानों पर प्रसिद्ध मन्दिर हैं। ब्रह्म पुराण में दक्षिणापथ की 6 नदियों तथा हिमवदा, विभूता उत्तरापथीय 6 नदियों- गोदावरी भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेणिका, तापी, पयोव्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका तथा वितस्ता को देव-तीर्थ माना गया है। देवालय निर्माण से पूर्व भूखण्ड का परीक्षण ततोपरान्त उस भूखण्ड में चतुष्षष्टिपद् वास्तु या शतपदवास्तु का विन्यास करते हैं। वर्गाकार भूखण्ड के सोलह(16) भाग करने पर उसके मध्य के चार भागों में गर्भस्थान शेष भाग पर भित्ति निर्माण किया जाता है। भीति के दो गुना शिखर का विधान है। यह गर्भगृह के जो छतरीनुमा ऊपर बना होता

है, जिसे शिखर या विमान कहते हैं और शिखर के चतुर्थांश मन्दिर परिक्रमा गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा करने के लिए स्थान होता हैं, इन समस्त विन्यासों का निर्माण वास्तुशास्त्र के अनुसार होता है। देवालय का सभा मण्डप गर्भगृह से द्विगुणित होता है। अर्थात् सभा मण्डप को मन्दिर का प्रवेश कक्ष कहा जाता है जो अत्यधिक विशाल होता है। यह देववालयों के साथ-साथ राजप्रासादों तथा गृहों में भी

पहले निर्माण किया जाता था। मण्डप का ही अन्य नाम देवायतन भी है। इसके अतिरिक्त लघु व अर्द्ध मण्डप भी होते हैं। मण्डपों का सांस्कृतिक एवं व्यावाहारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान होता था , जो दर्शन के अतिरिक्त वेदाध्ययन, पारायण, भजन-संकीर्तन, कथा, प्रवचन, कीर्तन, नर्तन आदि के लिए भी प्रयुक्त होते थे वर्तमान में भी होते हैं लेकिन सामान्य परिवर्तन के साथ अन्यत्र भवन में शास्त्र- चर्चाओं का आयोजन किया जाता है। (**मयमत** 25,2.3)

मन्दिर से संयुक्त निर्मित मण्डप को संवृत मण्डप और मन्दिर से प्रथक स्थित मण्डप को विवृतमण्डप कहा जाता है। उत्तरभारत में संवृतमण्डपों की परम्परा एवं दक्षिणभारत में संवृत तथा विवृत मण्डपों की परम्परा हैं। कालान्तर में धार्मिक कृत्यों के साथ-साथ अभिरञ्जन के लिए भी प्रासादों में नृत्यमण्डप रङ्गमण्डप, नाट्यमण्डप, सङ्गीतमण्डप, द्यूतमण्डपादि की निर्माण परम्परा भी प्रचलित हो गई। मण्डप निर्माण में एक विशेष नियम यह है कि कभी भी मण्डप की उच्छ्रिति मन्दिर से अधिक नहीं होनी चाहिए। मण्डपों के बहुत से भेद हैं और भेद का मुख्य कारण मण्डपों की स्तम्भ-संख्या में भेद है। जिस प्रकार शतमण्डप में सौ स्तम्भ और सहस्त्र-मण्डप में हजार स्तम्भ होते हैं। पुनः शतमण्डप के भी कई भेद हैं। यथा- (प्रसाद निवेश पृ224)

- सूर्यकान्त शतस्तम्भ मण्डप
- चन्द्रकान्त शतस्तम्भ मण्डप
- इन्द्रकान्त शतस्तम्भ मण्डप
- गन्धर्वकान्त शतस्तम्भ मण्डप
- ब्रह्मकान्त शतस्तम्भ मण्डप

मत्स्यपुराण में सताईस संवृतमण्डपों का वर्णन है। जिनके नाम पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृत-नन्दन, कौसत्य, बुद्धिसङ्कीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिञ्जय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपञ्च, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र, सुभद्रादि हैं लेकिन स्तम्भों की संख्या में अन्तर होते हैं। पुष्पक मण्डप में चौंसठ स्तम्भ होते हैं एवं प्रतिमण्डप में क्रमशः दो- दो स्तम्भों का ह्रास होता है और सुभद्र मण्डप में केवल 12 स्तम्भ ही होते हैं। (मत्स्यपुराण 270.7.14)

आचार्य मयासुर ने सोलह चतुष्कोण और आठ आयतास्र मण्डपों का वर्णन किया है।(मयमत 25,6.11) विश्वकर्माप्रकाश में भी चौंसठ प्रकार के चल और स्थिर मण्डपों का वर्णन है। (वि.क.प्र.4.41) मण्डप सप्त प्रमाण सूत्र के आकार के होते हैं जिसमें प्रथम मण्डप का मान प्रासाद के मान तुल्य, दूसरे मण्डप का मान प्रासाद के मान से सपाद गुणित, तीसरे मण्डप का मान प्रासाद के मान से सार्धगुणित, चौथे मण्डप का मान प्रासाद के मान से तृतीयांश दो गुणा, पाँचवे मण्डप का मान प्रासाद के मान से दो गुणा, छठें मण्डप का मान प्रासाद के मान से सपाद् दो गुणा और सातवें मण्डप का मान प्रासाद के मान से ढाई गुणा होता है जैसा कि क्षीरार्णव में उल्लेख है-

प्रथमे सम सपाद सार्द्ध च पादोनद्वयम् ।
द्विगुणं चाऽपि कर्तव्या सपाद द्वयमेव च।।
सार्द्ध द्वयं तु कर्तव्यं अत ऊर्ध्वं न कारयेत्।
सप्तधा प्रमाण सूत्रं वास्तुविद्भिरुदाहृतम्।। (क्षीरार्णव 116,5.6)

गर्भगृह- प्रासादपीठ के ऊपर गर्भगृह अथवा मण्डोवर बनाया जाता है। मण्ड का अर्थ है पीठ अथवा आसन और जो भाग उसके ऊपर बनाया जाता था, उसे 'मण्डोवर' कहते हैं। गर्भगृह में मुख्य देवता की प्रतिष्ठा की जाती है। यह तीन ओर से बन्द होता है तथा एक द्वार होता है। गर्भगृह में प्रायः प्रकाश कम होता है, इसमें बीच में उठी हुई वेदिका पर मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है। मूर्ति के ठीक सामने गर्भगृह का द्वार होता है। गर्भगृह और उसकी छत को चित्रों से अलङ्करण किया जाता है। मन्दिर का मुख्य शिखर गर्भगृह के ऊपर निर्माण किया जाता है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सामने अन्य मण्डप होते हैं। जैसा कि वशिष्ठ, नीलिमस्कल्पचर ट्रेडिशन ऑफ राजस्थान में वर्णन है। 'प्रासाद मण्डन' के अनुसार गर्भगृह चार कोने वाला समचोरस बनाना चाहिए, उसमें भद्र, सुभद्र और प्रतिभद्र आदि फालना (खांचा) बनाना शुभ होता है, लम्बचोरस गर्भगृह दोषकारक होता है। यदि लकड़ी से निर्मित एवं वलभी प्रासाद में गर्भगृह लम्बा हो तो दोष नहीं होता जैसा प्रासाद मण्डन में वर्णन है यथा-

मध्ये युगात्रं भद्राढ्यं सुभद्रं प्रतिभद्रकम् ।
फालनीयं गर्भगृहं दोषदं गर्भमायतम्॥
दारुजे वलभीनां तु आयतं च न दूषयेत् ।
प्रशस्त सर्वकृत्येषु चतुरस्रं शुभप्रदम् ॥ (प्रा. म. 3, 33-34)

गर्भगृह के द्वार के चार भाग होते हैं देहली या उदुम्बर, दो पार्श्व स्तम्भ तथा उत्तरङ्ग या सिरदल इन चारों भागों को अनेक प्रकार से अलङ्करण किया जाता है। मण्डन के अनुसार उदुम्बर या देहली की चौड़ाई के तीन भाग करके बीच में मन्दारक और दोनों पार्थों में ग्रास या सिंहमुख बनाने चाहिए। मन्दारक गोल और पद्मपत्र युक्त बनाना चाहिए। ग्रास या सिंहमुख को कीर्तिवक्त्र या कीर्तिमुख भी कहा जाता है। देहली के दोनों ओर के पार्श्व स्तम्भों के नीचे तलरूपक नाम के दो अलङ्करण बनाए जाते हैं।

स्तम्भों में स्त्री-पुरुषों की मूर्तियों को उकेरा जाता है। स्तम्भ के जिस भाग में ये आकृतियाँ उकेरी जाती है। उसे रूपस्तम्भ कहा जाता है। अलङ्करणों के अनुसार नाम भी हैं। यथा- सिंह शाखा, गन्धर्व शाखा, खल्व शाखा आदि। खल्व शाखा पर जो अलङ्करण बनाया जाता है। सूत्रधार मण्डन(3,56) में वर्णन है कि गर्भगृह की दीवार में जितने खांचें बनाए जाए, उतनी ही द्वार के पार्श्व स्तम्भ में शाखा भी होनी चाहिए। द्वार के दोनों पार्श्व स्तम्भों में कई खांचें या भाग बनाए जाते हैं। इस प्रकार एक शाखा, त्रिशाखा, पञ्चशाखा, सप्तशाखा और नवशाखा तक के पार्श्वस्तम्भ युक्त द्वार बनाए जाते हैं। द्वार के उत्तरङ्ग या सिरदल भाग में, प्रासाद के गर्भगृह में जिस देव की मूर्ति प्रतिष्ठित हो, उस देव की मूर्ति बनानी चाहिए और शाखाओं में उस देव के परिवार का रूप बनाना चाहिए। उत्तरङ्ग में गणेश जी को भी स्थापित करना चाहिए। जैसा कि सूत्रधार मण्डन ने कहा है-

यस्य देवस्य या मूर्तिः सैव कार्योत्तरङ्गके ।

शाखायां च परिवारो गणेशश्चोत्तरङ्गके।। (प्रा. म.3, 68)

गर्भगृह में देवों के पदस्थान के विषय में भगवानदास जैन ने 'वत्थुसार पयरण' के मत का उल्लेख किया है कि गर्भगृह के दो भाग करना चाहिए, उनमें से दीवार की तरफ के भाग के भी पाँच भाग करना चाहिए, इनमें दीवार वाले प्रथम भाग में यज्ञ को, दूसरे भाग में देवियों को, तीसरे भाग में कृष्ण (विष्णु) और सूर्य को, चौथे भाग में ब्रह्मा को और पाँचवें भाग में शिवलिङ्ग को अर्थात् गर्भगृह के मध्य में प्रतिष्ठा करें।

अन्तराल- जिस कक्ष में गर्भगृह का द्वार खुलता है उसे अन्तराल(कौली) कहते हैं। जैसा कि श्री नारायण चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक नागर शैली के नए हिन्दू मन्दिर में वर्णन किया है कि अन्तराल के आगे महामण्डप होता है, जिसके स्तम्भ इसे महामण्डप से अलग करते हैं। अन्तराल में खड़े होकर गर्भगृह में प्रतिष्ठित भगवान् की मूर्ति के दर्शन किए जाते हैं। अन्तराल की चौड़ाई महामण्डप की चौड़ाई से कम होती है, इसकी लम्बाई महामण्डप की लम्बाई के बराबर या उससे कम या अधिक हो सकती है।

महामण्डप- अन्तराल के आगे महामण्डप होता है। द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक भारतीय स्थापत्य में उल्लेख किया किया है कि मन्दिर का यह सबसे बड़ा भाग होता है इसमें अनेक स्तम्भ होते हैं। इसके दाँए और बाँयी ओर की दीवारों में द्वार बनाए जाते हैं लेकिन कुछ क्षेत्रों में केवल गवाक्ष प्रकाश के लिए (झरोखा) बने होते हैं। महामण्डप की ऊँचाई भी बहुत होती है। इसके वितान को नक्काशी से अलंकृत किया जाता है। वितान को गोलाकार बनाया जाता है अतः नीचे की अपेक्षा इसके ऊपर की ऊचाई कम होती जाती है, इसमें तरह-तरह के पुष्पों, पशुओं, देवी-देवताओं की कला कृतियाँ बनायी जाती हैं। वितान का यह भाग 'रूपकण्ठ' कहलाता है। सबसे ऊपर, बीचों-बीच केन्द्र में एक विशाल और वृत्ताकार कमल आदि से अलंकृत गोल पत्थर लगाया जाता है, जो वितान की छत से झूमर की तरह दिखाई देता है। इसको 'पद्मशिला' कहा जाता है। महामण्डप के ऊपर के शिखर को 'घूमट' (घण्टी)कहा जाता है, यह मुख्य शिखर से भिन्न होता है। मुख्य शिखर जहाँ उदीयमान होता है, वहीं घूमट बैठा हुआ होता है। इसकी चौड़ाई की अपेक्षा ऊँचाई बहुत कम होती है। इसके ऊपर की बनावट को संवरणा कहते हैं। इसे सांभरण भी कहा जाता है। संवरणा की चोटी पर बड़ी घंटिका लगाई जाती है। संवरणा को घंटियों, और सिंहों की मूर्तियों से क्रमशः अनेक प्रकार अलंकृत भी किया जाता है।

अर्द्धमण्डप-यह महामण्डप के आगे वाला भाग होता है तथा महामण्डप से छोटा होता है। अत्यधिक बृहद् मन्दिरों में नृत्यमण्डप व रङ्गमण्डपादि भी होते हैं।

.

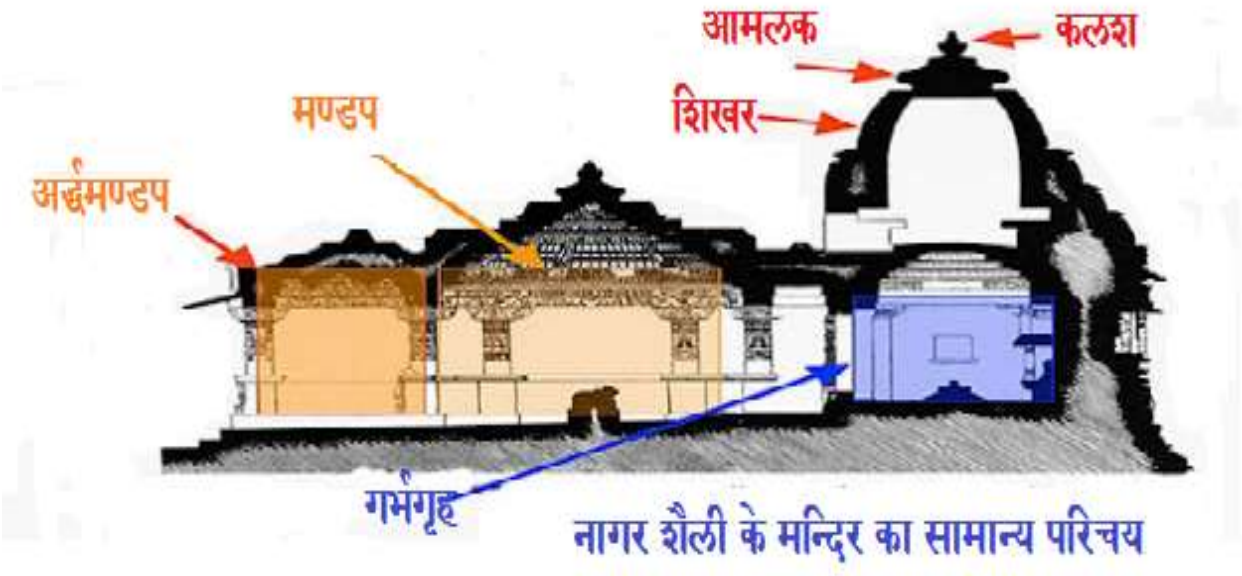

नागर शैली के मन्दिर का सामान्य परिचय

देवालय के विस्तार से द्विगुणित देवालय की ऊँचाई होनी चाहिए । ऊँचाई से तृतीयांश तक मन्दिर की कटि होती है। अर्थात् देवालय विस्तार के अर्धतुल्य गर्भगृह, गर्भगृह के चतुर्थांशं द्वार का विस्तार, विस्तार से द्विगुणित द्वार की ऊँचाई होनी चाहिए। द्वार तीन, पाँच व सप्त शाखायुक्त होना चाहिए। शाखा के श्चतुर्थांश के अधोभाग में प्रतिहार होने चाहिए।

द्वारव्यास त्रिभागेन मध्ये मन्दारको भवेत्

वृत्तं मन्दारकं कुर्याद् मृणालं पद्मसंयुतम्॥

जाडयकुम्भः कणाली च कीर्त्तिवक्त्रद्वयं तथा।

उदम्बरस्य पार्श्वे च शाखायास्तलरूपकम्॥ (प्रा. म. 3, 39-40)

प्रवेशद्वार- प्रवेशद्वार चतुष्किका अथवा अर्द्धमण्डप में खुलता है। मुख्य द्वार अलंकृत चौखट से युक्त होता है या फिर तोरण के रूप में होता है। जगती के चबूतरे से मन्दिर में प्रवेश करने का द्वार मुख्य द्वार होता है और इसके आगे सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल' ने अमरकोष का उद्धरण देते हुए लिखा है पुरद्वारं तु गोपुरम्। अतः गोपुरम् का अर्थ 'द्वार' है।सभी मण्डपों की गरिमा और गवाक्षों का सौन्दर्य स्तम्भों के द्वारा होता है। स्तम्भ के भागों के आधार पर कुम्भिका, स्तम्भ, भरणी, शीर्ष एवं उच्छालक होते हैं। स्तम्भ की बैठकी (जिस पर स्तम्भ खड़ा किया जाता है) कुम्भिका कहलाती है। इसके ऊपर स्तम्भ होता है। यह चौकोर, षट्कोणीय, अष्टकोणीय या गोल हो सकता है या इसका एक भाग चौकोर हो और ऊपर का भाग अष्टकोणीय या गोल हो सकता है। स्तम्भ का ऊपरी सिरा 'भरणी' है जिसका नीचे का 'भाग 'आमलक' एवं ऊपर का भाग 'पद्म' कहलाता है। 'भरणी' स्तम्भ से कुछ बड़ी होती है। भरणी के ऊपर उसका शीर्ष होता है। यह चारों ओर खम्भे से आगे निकला हुआ होता है। इसमें कलश, देवी-देवताओं आदि की मूर्तियाँ उकेरी जाती हैं। स्तम्भ सामान्यतः शीर्ष पर समाप्त हो जाता है उसके पश्चाद् उसके शीर्ष के ऊपर स्तम्भ की चौड़ाई का दूसरा स्तम्भ लगा दिया जाता है जो मुख्य स्तम्भ से प्रायः चतुर्थाँश लम्बा होता है। इसके ऊपर भी शीर्ष होता है। **प्रासाद मण्डन** में वर्णन है कि चार कोनेवाला चतुरस्र, भद्रवाला भद्रक, प्रतिरथवाला वर्द्धमान, आठ कोनेवाला अष्टाम्र और आसन के ऊपर से भद्र और आठ कोनेवाले को स्वस्तिक स्तम्भ कहा जाता है।

उर्ध्वछन्द-उर्ध्वछन्द के मुख्तः तीन भाग होते हैं।

जगती- प्रासाद मण्डन में वर्णन है कि प्रासाद की भूमि को जगती कहते हैं। जैसे राजा का सिंहासन रखने के लिए अमुक स्थान मार्यादित रखा जाता है, वैसे प्रासाद बनाने के लिए अमुक भूमि मर्यादित रखी जाती है। जगती का अर्थ पीठ है। पीठ को आधार माना जाता है और बिना पीठ के भवन की स्थापना नहीं हो सकती है। जिस प्रकार पुरुषाङ्गों में प्रथम अङ्ग चरण अथवा पाद है, उसी प्रकार प्रासाद-पुरुष जगत्याश्रित ही है। जगती पर समस्त परिवार देवों की मढियाँ चारों ओर विन्यासित की जाती है।

प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते।

यथा सिंहासन राज्ञः प्रासादस्य तथैव सा।। (प्रा. म., 2.1)

अर्थात् यह पञ्चायतन पूजा के अनुरूप है। अपराजितपृच्छा के अनुसार- **'प्रासादो लिङ्गमित्युक्तो जगती पीठमेव च।**(अपराजितपृच्छा, 115.5) प्रासाद शिवलिङ्ग का स्वरूप है। जैसे शिवलिङ्ग के चारों तरफ पीठिका है, उसी प्रकार प्रासाद के जगती रूप पीठिका है। समचोरस, लम्ब चोरस, आठ कोने वाली, गोल और लम्ब गोल भेद इस प्रकार जगती पाँच प्रकार की होती हैं। अतःप्रासाद का जैसा आकार हो, वैसी ही जगती होती है।यथा-

चतुरस्रायताष्टास्रा वृत्ता वृत्तायता तथा।

जगती पञ्चधा प्रोक्ता प्रासादस्यानुरूपतः ॥ (प्रा. म., 2.2)

मन्दिर शिखर- शिखर के पाञ्चाल, वैदेह, मागध, कौरव, कौसल, शौरसेन, गान्धार और आवन्तिक आठ भेद होते हैं परन्तु आवन्तिक शिखर मानवों के लिए(**सर्वे ते तैतलानां स्युरर्धादधस्तु मानुषम्**)अन्य सभी शिखर देवालयों के योग्य होते हैं यथा-

पाञ्चालं चापि वैदेहं मागधं चापि कौरवम्।

कौसलं शौरसेनं च गान्धारावन्तिकं तथा।। (मयमत 18.10)

शिखर की आकृति- देवी-देवताओं और महात्माओं के भवन के शिखरों के आकार चौकोर, वृत्ताकार, षट्कोण, अष्टकोण, द्वादश कोण, षोठश कोण, पद्माकार, पके हुए आँवले के आकार तथा लम्बी गोलाई के आकार से युक्त गोलाकार होता है-

देवानां प्रथितान्येव पाषण्ड्यास्त्रमिणामपि।

चतुरस्रं च वृत्तं च षड्स्राष्टास्त्रमेव च।।

द्वादशास्त्रं द्विरष्टास्त्रं पद्मकुड्मलसन्निभम्।

तथामलकपक्वाभं दीर्घवृत्तं च गोलकम्।। मयमत 18.15-16)

प्रत्येक ओर उद्गम की तरह भद्र, प्रतिभद्र और कर्ण होते हैं किन्तु ये दीवारों के कटावों की तरह गहरे नहीं होते, इसके भद्र और प्रतिभद्र को 'रथ' और 'प्रतिरथ' कहते हैं। रथ और प्रतिरथों की संख्या के अनुसार शिखर को त्रिरथ या पञ्चरथ कहते हैं। शिखर का सौन्दर्य सबसे अधिक उन शृङ्गों के कारण होता है, जो रथ पर बनाए जाते हैं और शिखर उभरे हुए उसी के छोटे भाग होते है, इन्हें 'ऊरुशृङ्ग' कहते हैं। इन ऊरुशृङ्गों के अतिरिक्त स्थपति शिखर में अनेक छोटे-छोटे शृङ्ग बनाकर उसकी शोभा बढ़ा देते हैं। ये बहुधा 'वरण्डिका' के ऊपर या 'रथों' के बीच में बनाए जाते हैं, इन्हें 'कर्णशृङ्ग' कहते हैं।' भगवानदास जैन के अनुसार मण्डोवर के छज्जे के ऊपर दो-एक थर और लगाकर तब शिखर का प्रारम्भ करते हैं। शिखर के नीचे का भाग मण्डोवर के पटाव के आकार का होता है लेकिन ऊपर उठने के साथ- साथ संकरा होकर कोणाकार रूप धारण कर लेता है। जहाँ शिखर का बढ़ना रुकता है, उसे 'स्कन्ध' कहते हैं। स्कन्ध के ऊपर स्कन्ध से छोटी पत्थर की गोल शिला रखी जाती है, इसे 'ग्रीवा' कहते हैं। गोल शिला पर आँवले के आकार की एक और विशाल शिला लगाई जाती है, इसे 'आमलक' कहते हैं। दूर से देखने पर 'आमलक' आँवले की प्रतिकृति के सदृश दिखाई देता है। आमलक के ऊपर गोलार्द्ध में, क्रमशः छोटे होते हुए कमलदल से अलंकृत गोल पत्थर पर लगाए जाते हैं, जिन्हें 'चन्द्रिका' कहते है। चन्द्रिका के ऊपर इससे छोटा एक आमलक लगाया जाता है। जिसे 'आमलसारिका' कहते है। इस पर एक विशाल कलश स्थापित किया जाता है। यथा-

क्षीरार्णव समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम् ।

माङ्गल्येषु च सर्वेषु कलशं स्थापयेद् बुधः ॥ (प्रासादमण्डन, अ. 4.36)

प्रासाद मण्डन' में कलश की उत्पत्ति और स्थापना के विषय में कहा गया कि जब देवों ने क्षीर समुद्र का मन्थन किया, जब उसमें से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। इन चौदह रत्नों में एक काम कुम्भ नाम का श्रेष्ठ कलश भी प्राप्त हुआ था। यह प्रासाद के अग्र भाग (शिखर) पर और सभी माँगलिक स्थानों में विद्वानों द्वारा स्थापित किया जाता है।' प्रसादमण्डन में सुवर्णपुरुष (प्रासाद पुरुष) की स्थापना के विषय में कहा गया है। आमलसार के गर्भ में घी से भरा हुआ सोना, चाँदी अथवा ताँबे का कलश सुवर्ण पुरुष के पास रखना चाहिए तथा चाँदी अथवा चन्दन का पलङ्ग रखे, उसके ऊपर रेशम की शय्या बिछा करके उस पर सुवर्ण

पुरुष को शयन कराना चाहिए। यह विधि शुभ दिन में वास्तु पूजन करके करनी चाहिए, क्योंकि यह प्रासाद का मर्मस्थान है। यथा-

घृतपात्रं न्यसेन्मध्ये ताम्रतारं सुवर्णजम् ।

सौवर्णपुरुषं तत्र तुलीपर्यङ्कशायिनम् ॥ (प्रा. म. अ. 4.34)

प्राचीनसमय में कभी-कभी सोने का कलश लगाया जाता था अथवा ताँबे के कलश पर सोना चढ़ाकर लगाया जाता था। आजकल प्रायः स्वर्णमण्डित ताँबे के कलश ही लगाये जाते हैं। उसका आकार शिखर के आकार के अनुपात में होता है। इसको ढ़कने के लिए प्रायः नारियल के आकार का जो धातु या पत्थर लगाया जाता है, जिसे 'वीजापूरक' कहा जाता है।'

शिखर के सामने, अन्तराल के ऊपर, जो निर्माण किया जाता है, उसे 'शुकनासिका' कहते हैं। शिखर की प्रायः 2/3 ऊँचाई पर यह निर्माण समाप्त हो जाता है और इसके शीर्ष पर सिंह की एक मूर्ति लगा दी जाती है। यह शुकनासिका शिखर के आगे होती है और दर्शकों को वह शिखर का ही भाग प्रतीत होती है, किन्तु घूमट की तरह उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। शुकनासा, प्रासाद या देव-मन्दिर की नासिका के समान है।

प्रासादमण्डन में ध्वजा के विषय में उल्लेख है कि प्रासाद के शिखर के पिछले भाग में दाहिनी प्रतिरथ में ध्वजादण्ड रखने का छिद्रवाला स्थान ध्वजाधार बनाना चाहिए। यह पूर्वाभिमुख प्रासाद के ईशान कोने में और पश्चिमाभिमुख प्रासाद के नैर्ऋत्य कोण में बनाना चाहिए। यथा-

प्रासाद पृष्ठदेशे तु दक्षिणे तु प्रतिरथे।

ध्वजाधारस्तु कर्त्तव्य ईशाने नैर्ऋतेऽथवा । (प्रा. म. 4.40)

ध्वजा के माहात्म्य के विषय में कहा गया है कि तैयार हुए प्रासाद के शिखर को ध्वजा रहित देखकर असुर उसमें रहने की इच्छा करते हैं। अतः देवालय को ध्वजा रहित नहीं रखना चाहिए। यथा-

निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीने सुरालये।

असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीनं न कारयेत्॥ (प्रासाद मंडन. 4.48)

दशाश्वमेध यज्ञ करने से और समस्त भूतल की तीर्थयात्रा करने से जो पुण्य मिलता है, वही पुण्य प्रासाद के ऊपर ध्वजा चढ़ाने से होता है। यथा-

ध्वजोच्छ्रायेण तुष्यन्ति देवाश्च पितरस्तथा।

दशाश्वमेधिकं पुण्यं सर्वतीर्थधरादिकम् ॥ (प्रा. म. 4.49)

ध्वजा चढ़ाने वाले के वंश की पहले की 50 और तत्पश्चात् 50 तथा एक अपनी, इस तरह कुल एक सौ एक पीढ़ी के पूर्वजों को नरकरूपी समुद्र से यह ध्वजा मुक्ति प्रदान करती है। यथा-

पञ्चाशत् पूर्वतः पश्चादात्मानं च तथाधिकम् ।

शतमेकोत्तरं सोऽपि तारयेन्नकार्णवात्। (प्रा. म.4..50)

2.2. मन्दिरों की आवश्यकता-

मन्दिर भारतीय संस्कृति के मूलाधार माने जाते हैं क्योंकि इनसे समाज का आत्मीय सम्बन्ध होता है और ये मन्दिर ही मानव के लिए ज्ञान एवं विज्ञान के स्रोत होते हैं । हमारी भारतीय संस्कृति का प्राचीन काल से देव शक्तियों से विकास माना जाता है। अतः लोग विश्व का सञ्चालक ईश्वर एवं देवों के अङ्गोपाङ्ग विशिष्ट गुण तथा स्वरूप के विश्लेषण से उनकी उपासना करने लगें। तत्पश्चात् अनेक शास्त्रकारों ने देव प्रतिमाओं के विधान व निर्माण की गवेषणा कर उन देवप्रतिमाओं की स्थापना और निवास के लिए देवप्रासादों का निर्माण करवाया क्योंकि मन्दिर सांस्कृतिक और सामाजिक वैभव के प्रतीक हैं। धर्म और दर्शन उनकी आधारशिला हैं। विष्णु पुराण के अनुसार भारतीय संस्कृति की संजीवनी शक्ति 'धर्म' है। यह आध्यात्म की कर्मभूमि थी, जहाँ देवता भी विग्रह से शरीर धारणकर प्रकट होने के लिए लालायित रहते हैं -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।(वि.पु.1.3.24)

परम ऐश्वर्यवाले परमात्मा मनन करते पर सदा ही इस शत्रुनाशक एवं अन्धकार निवारक का हम मनन करते हैं। इनकी स्तुति के ज्ञान से मुझको ज्ञान प्राप्त होता हैं। जो परमात्मा दानशील एवं सुकर्म करने वाले पुरुष के आवाहन पर आकर वह हमें कष्ट से छुडाते हैं।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः।

यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः॥ (अथर्व.4.24.1)

मनुष्य प्रासादों (मन्दिर)को केवल देवताओं के ही निवास स्थान नहीं वे तो सम्पूर्ण विग्रह को ही देवताओं के सदृश श्रद्धा रखते थे और देवालयों के निर्माण को पुरुषार्थ चतुष्टय(धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) के स्रोत भी स्वीकार करते थे। जैसा कि विश्वकर्मा ने कहा है

प्रणीते क्षीरार्णवे नाम्नि वास्तुविषयके ग्रन्थे-

प्रासादो देवरूपः स्यात् पादौ पादशिलास्तथा ।

गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं जा पादोर्ध्वम् उच्यते ।।

स्तम्भाश्च जानवो ज्ञेया घण्टा जिह्वा प्रकीर्तिता ।

दीपः प्राणः रूपो ज्ञेया ह्यपाने जलनिर्गतः ।।

ब्रह्मस्थानं यदैतच्च तन्नाभिः परिकीर्तिता ।

हृदयं पीठिका ज्ञेया प्रतिमा पुरुषः स्मृतः ।।

पादजास्त्वहङ्कारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते ।

तदूवं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमात्मा स्मृतौ बुधैः ।। क्षीरार्णवः (1,1-5)

शास्त्रकारों का मत है कि मन्दिर निर्माण करने से अक्ष्यलाभ प्राप्त होता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने कहा कि जैसा फल यज्ञयागादि के करने से प्राप्त होता है वैसा फल देवप्रासाद के निर्माण करने से भी होता है। यथा-

इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता।

देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ।। (बृ.सं. प्रा.ल.अ. 2)

मण्डपं गोपुरं तीर्थं मठं क्षेत्रं तथोत्सवम्। वस्त्रं गन्धं च माल्यं च धूपं दीपं च भक्तितः।।

विविधान्नं च नैवेद्यमपूपव्यञ्जनैर्युतम्। छत्रं ध्वजं च व्यजनं चामरं चापिसाङ्गकम्।।

राजोपचारवत्सर्वं धारयेल्लिंगबेरयोः। प्रदक्षिणां नमस्कारं यथा शक्ति जपं तथा।।(शि.पु. वि. सं. पं. अ.3-5) इस प्रकार मन्दिर निर्माण के नियम पुराण, वास्तुशास्त्रादि में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। अतः स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि देवालय स्थापत्यकला का विकास धार्मिक आध्यात्मिक चेतना से ही हुआ होगा क्योंकि मन्दिरों में सांस्कृतिक, सामाजिक और लोकोपकारक अनेक कार्य ही होते हैं यथा- धार्मिक, सामाजिक विषयों पर शास्त्रार्थ, ज्ञान एव विज्ञान की शिक्षा प्रदान करना, मानवों की समस्याओं का समाधान अनेक अलौकिक उपायों पर चिन्तनादि जैसा कि वासुदेव शरण उपाध्याय ने मन्दिर की

आवश्यकता का उल्लेख करते हुए कहा है- मन्दिर का निर्माण, पारलौकिक कार्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। भक्त इष्टदेव की पुकार सुनने वहाँ एकत्रित होते हैं। अतः गर्भगृह के बाद ऐसे मण्डप की आवश्यकता हुई, जहाँ भक्तजन आराधना एवं उपदेश सुनते थे। ऐसे मण्डप के निर्माण से निम्नलिखित कार्यों में भी सहायता - मिली -

- विद्वत् परिषद् द्वारा यहाँ पर एकत्रित होकर धार्मिक और सामाजिक विषयों पर विवेचन व शास्त्रार्थ किया जाता था और तत्त्वबोध का पता लगाया जाता था।
- कथा श्रवण का स्थान मन्दिर का वातावरण धार्मिक प्रवचनों और कथाओं के श्रवण हेतु उपयुक्त स्थान था।
- ज्ञान-प्राप्ति का स्थान मन्दिरों में शिक्षण कार्य भी होता था एवं वर्तमान में मन्दिर परिसर के गुरुकुलों में अध्यापन कराया जाता है और वहाँ पुस्तकालयों की भी व्यवस्था है। धनाढ्य व्यक्ति मन्दिर-निर्माण करवाकर वहाँ धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन की व्यवस्था करवाते थे। इसी का अनुकरण मस्जिद, गिरजाघर आदि में किया गया।
- प्रजाजनों के कष्ट-निवारण का स्थल मन्दिर का मण्डप शासकों के सम्मुख प्रजाजन द्वारा कष्टों के वर्णन करने तथा निराकरण के मार्ग की गवेषणा का समुचित स्थान था। राजाजन यहाँ पर देवता के सम्मुख समृद्धि और नवीन योजनाओं के सम्बन्ध में चर्चा करते थे।
- अधिवेशन स्थल मन्दिरों के मण्डप में राज-सदस्यों द्वारा शासन सम्बन्धी विषयों पर भी चर्चा की जाती थी। आज भी पञ्चायतों द्वारा मन्दिरों में बैठक आयोजित की जाती है तथा अनेक विषयों पर निर्णय किया जाता है।

2.3 मन्दिरों का महत्त्व एवं प्रकार- देव स्थापना से देवालय में दैव ऊर्जा का संचार मंदिर के हर कण में व्याप्त हो जाता है।जीवन में जब हम संघर्षों से हार जाते हैं तो एक लक्ष्य ईश्वर और उनका मन्दिर ही हमारे मन के सभी झंझावतों को दूर कर स्थिर करता है क्योंकि धर्म के साथ-साथ वैज्ञानिक प्रमाण भी हैं कि धनात्मक ऊर्जा केंद्र मन्दिर संचार रूपी ऊर्जा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र होते हैं। ये मंदिर नक्षत्रीय ऊर्जा के स्रोत होते हैं। भक्त श्रद्धा से मंदिर में नंगे पैर होता है, इससे उसके शरीर में ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है जैसे ही वह करताल बजाता है या हाथ जोड़ता है तो

उसके शरीर का चक्र शीघ्रता से कार्य करने लगता है। देवता को प्रणाम करता है तो देवता परावर्तित होने वाली पृथ्वी एवं ग्रह, नक्षत्रीय आकाशीय तरंगे उसके मस्तक पर पड़ती हैं, जिससे मस्तक का आज्ञा चक्र सकरात्मक भावना प्रकट करता हैं। मंदिर में मन्त्र, ध्यान, यज्ञ, पूजा, आरती, कीर्तन, शंख एवं घंटियों की ध्वनियाँ मन्दिर की भीतरी सरह से टकराकर मंदिर का वातावरण वैज्ञानिक ऊर्जा का स्त्रोत बन जाता है और इस दैवीय ऊर्जा के संचार से भक्त शांति का अनुभव करने लगता है। यथा-

देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम्

मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः।। (शिल्परत्न 16.1)

मन्दिरों के प्रकार-

- प्रासादों के नाम - मेरु, मन्दर, कैलास, विमानच्छद, नन्दन, समुद्र, पद्म, गरुड़, नन्दिवर्धन, कुञ्जर, गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशश्रि, अष्टश्रि आदि बीस प्रकार के देवालय होते हैं। यथा –

मेरु-मन्दर-कैलास-विमानच्छद नन्दनाः।

समुङ्ग-पद्म-गरुड-नन्दिवर्धन-कुञ्जराः।।

गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः।

सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥बृ.वा.मा.17-18॥

2.3. मन्दिरों का इतिहास -

समराङ्गणसूत्रधार' में वर्णन है कि प्राचीनसमय में ब्रह्म ने देवताओं के लिए आकाश में यात्रा करने के लिए पाँच विमान का निर्माण किया था इसी आधार पर मनुष्यों ने प्रासादों का निर्माण प्रारम्भ किया। इससे प्रतीत होता है कि विमान और रथ को ही मन्दिर का मूल पर्याय मानकर राजा भोज ने रथों को मन्दिरों का मूल पर्याय मानकर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। दक्षिण-भारतीय कोषकारों एवं वास्तुग्रन्थों में विमान को मंदिर का पर्याय बताया है, उत्तरभारत में भी 'विमान' शब्द वास्तु के रूप में प्रयुक्त हुआ है। रामायण' में भी इसका वर्णन है।

स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम्।

मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम्।। (रामायण 5.15-16)

पर्सी ब्राउन' के मतानुसार ऋग्वैदिक ऋचाओं में मन्दिरों का उद्भव मिलता हैं। (इण्डियन आर्किटेक्चर, P. 4)

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।

ते ह्रम्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीलिनः पयोधाः ॥ (ऋग्वेद 7.56.16)

प्र ने पन्था देवयाना अहश्र न्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।

अभूदु केतुरूपसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्येभ्यः ॥ (ऋग्वेद 7.76.2)

1. पूर्व-वैदिक संस्कृति के मन्दिर
2. सिन्धु घाटी सभ्यता संस्कृति के मन्दिर
3. वैदिक संस्कृति के मन्दिर
4. उत्तर-वैदिक संस्कृति के मन्दिर
5. पूर्व-मौर्य संस्कृति के मन्दिर (400 ई0 पू0)
6. उत्तर-मौर्य संस्कृति के मन्दिर
7. अशोक संस्कृति के मन्दिर
8. द्युग-कालीन तथा प्रान्ध संस्कृति के मन्दिर (185-150 ई0 पू0)
9. लयन-प्रासाद-हीनयान बौद्ध-प्रासाद (200 ई0पू0से 200ई0)
10. दाक्षिणात्य-पार्वत-प्रासाद वास्तु (200ई0 पू0-500 ई0)
11. उत्तरापथीय वास्तुप्रासाद एवं रचना का विकास
12. गुप्त नरेशों के स्वर्णिम समृद्ध राज्य-काल में नागर-प्रामाद जन्म, विकास एवं प्रसार (350-650 ई.)
13. चालुक्य-नरेशों के राज्य संस्कृति में प्रासादों की समीक्षा
14. पल्लव राजवश की देन (600-897 ई.)
15. 14 चोल-नरेशों की मान्यता और उनके काल में उत्थित विमानप्रासाद (600-1150 ई.) पाण्ड्य-नरेशो के युग मे विमान-वास्तु में नई आकृतियाँ तथा नवीन निवेशों का उत्थान (1100-1350 ई.)

16. विजयनगर-सत्ता में विमान प्रासादों में नई उद्भावनाएँ तथा नई आकृतियाँ (1352-1565 ई.)
17. उत्कल या कलिंग (ओड़ीसा) - भुवनेश्वर, कोणार्क तथा पुरी-बेसरी राजाओं का श्रेय
18. बुन्देलखण्ड खजुराहो - चन्देलों तथा प्रतीहारो की देन
19. गुर्जरो वा महान् प्रकर्ष - गुजरात (लाट) तथा बाठियावाड
20. मधुरा-वृन्दावन
21. भारत के दोनों महा प्रदेशों (उत्तर एवं दक्षिण) की प्रासाद-कला के इस वर्गीकरण के उपरान्त हमें पूर्व-पश्चिम के साथ बृहत्तर भारत- द्वीपान्तर एवं मध्य एशिया का भी अध्ययन करेंगे-
22. बंगाल पाल वंश की प्रासाद-कला (750- 1174ई)
23. बंगाल सेन वंश की प्रासाद-कला (1070- 1230ई)
24. काश्मीर में एक नवीन संगम का दर्शन (200-1300ई)
25. नैपाली वास्तु-कला
26. सिहल द्वीपीय प्रासाद-कला
27. ब्रह्म (वर्मा) - देशीय मन्दिर
28. वृहत्तर-भारतीय-प्रासाद-कला
29. कम्बोडिया
30. चम्पा
31. जावा इत्यादि

प्राचीन मन्दिर- 10वीं सदी तक आते-आते भू-प्रशासन में मन्दिर की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गई थी। एक ओर स्तूपों का निर्माण जारी था वहीं दूसरी ओर सनातन धर्म में सम्बन्धित देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ भी बनने लगी थी। प्रत्येक मन्दिर या देवालय में एक प्रधान या अधिष्ठाता देवता की मूर्ति होती है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि मन्दिरों के पूजा गृह तीन प्रकार के होते हैं -

1. संधर - जिसमें प्रदक्षिणा पथ होता है।
2. निरंधर - जिसमें प्रदक्षिणा पथ नहीं होता है।
3. सर्वतोभद्र - जिसमें सब तरफ से प्रवेश किया जा सकता है।

उस समय कुछ साधारण श्रेणी के मन्दिर होते थे, जिनमें बरामदा, बड़ा कक्ष/मण्डप और पीछे पूजा गृह हैं, जैसे- उत्तरप्रदेश में देवगढ़, मध्यप्रदेश में एरण और विदिशा के पास उदयगिरि के मन्दिर।

1- शिव-प्रासाद	विष्णु-प्रासाद	ब्रह्मा के प्रासाद
1 विमान	1 गरुड	1 मेरु
2 सर्वतोभद्र	2 वर्धमान	2 मन्दर
3 गज-पृष्ठन	3 कैलाग	3 शखवर्न
4 पचक	4 पुष्पक	4 हंस
5 वृषभ	5 गृहराज	5 भद्र
7 नलिन	6 मुक्तकोण	6 स्वस्तिक
6 उत्तुंग	7 रुचक	7 मिश्रक
8 द्राविह	8 पुण्ड्रवर्धन	8 मालाधर
सौर-प्रासाद	**चण्डिका-प्रासाद**	**विनायक प्रासाद**
गवन	नन्यावनं	गुहाघर
चित्रकूट	बलभ्य	शालाक
किरण	सुपर्ण	वेणुभद्र
सर्वसुन्दर	सिह	कुञ्जर
श्रीवत्स	विचित्र	हर्ष
पद्मनाभ	योगपीठ	विजय
वैराज	वृत्त	घटानाद
पनाकी	उदकुम्भ	मोदक

लक्ष्मी-प्रासाद	**सर्वदेव-साधारण-प्रासाद**
महापच	वृत
हर्म्य	वृतायत
उज्जयन्त	चैत्य
गधमादन	लयन

शतश्रृग	पट्टिश
मुविभ्रान्त	विभव
मनोहारी	तारागण

2.4 मन्दिर प्रबन्धन की आवश्यकता- भारत में मंदिर विकास बोर्ड, मंदिरों के संचालन तथा प्रबन्धन के लिए वैधानिक और स्वतन्त्र संस्थाएँ हैं, यद्यपि इनका लक्ष्य मंदिर प्रबन्धन के द्वारा मन्दिर परियोजना के साथ- साथ समाज की उन्नति करना है अर्थात् संगठनात्मक प्रबन्धन के द्वारा मंदिर की स्थिरता के लिए व्यवस्था, जिससे प्रबन्धन मंदिर समुदाय की धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना से समाज में ज्ञान, विज्ञान, शान्ति तथा सद्भावना का विकास कर समाज में श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करना तत्पश्चाद् एकत्रित होकर भगवान की पूजा और सेवा का उचित प्रबन्ध करना है। अतः सद्भावना एवं विकास के लिए देवालय में प्रबन्धन के लिए यथोचित अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है।

इस प्रबन्धन के द्वारा अधोलिखित विषयों की योजना का पालन किया जाता है-

- अनुष्ठानों का पालन सुनिश्चित करना एवं ज्ञान विज्ञान का विकास करना।
- नगरों में मन्दिरों का विकास एवं रख-रखाव करना।
- मंदिर की सम्पत्ति, बैंक खाता एवं दैनिक आय का विवरण रखना।
- दर्शन के लिए उचित व्यवस्था करना।
- तीर्थयात्रियों के लिए उचित व्यवस्था सुनिश्चित करना।
- कर्मचारियों और गाय के कल्याण का ध्यान रखना।
- प्रसाद को स्वच्छता पूर्वक तैयार करना एवं उसका वितरण करना।
- परिसर में मन्दिर, भवन, रास्ते एवं बिजली का रखरखाव तथा पेयजल आपूर्ति यथोचित करना।
- शैव-दुर्गा सहित अन्य देवी-देवताओं के मंदिरों में विशेष पूजा पद्धति का ज्ञान, नैवेद्य विधि, आरती, त्योहारों के आयोजन तथा उनका महत्त्व, मंदिर ट्रस्ट के नियम एवं कार्य, धर्मशाला एवं भोजनशाला की व्यवस्था

मंदिरों का वैज्ञानिक महत्त्व-

मंदिर शुद्धता- मनुष्य शुद्ध मन एवं तन के साथ मंदिर में प्रवेश करते हैं और इस प्रकार भगवान के दर्शन करने वालों को इष्टसिद्धि प्राप्त होती है क्योंकि मंदिरों में शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता है और जहाँ शुद्धता होती है वहाँ शान्ति, वैभव और समृद्धि स्वयं चली आती है तथा यही दैवीय ऊर्जा है और वैज्ञानिक प्रमाण भी है। जैसा कि वास्तुशास्त्र में प्रमाण है कि सर्व प्रथम देवालय निर्माण के लिए भूखण्ड का चयन बहुत ही अनिवार्य घटक है जैसा कि प्रसाद निवेश में कहा गया है- इस परीक्षा मे भू- वर्षण, अकुरारोपण आदि प्रक्रियाएँ भी वैदिक व्यवस्थाएँ हैं क्योकि किसी भी यज्ञ सम्पादन मे आवश्यक यज्ञ स्थल चयन एव उस पर वेदी- निर्माण- ये प्रक्रियाएँ एक अनिवार्य अङ्ग हैं। प्रासाद-निर्माण में आवश्यक वैदिक कर्म काण्ड प्राथमिक संस्कार ही नहीं, वे उस के पूरक एवं अभिन्न अङ्ग हैं।

2.6 भारत में मन्दिर निर्माण की शैलियाँ

मन्दिर निर्माण के अनेक नियमों का वास्तुकारों ने वर्णन किया है लेकिन वास्तुशास्त्र के मत से मन्दिरों की प्रमुख रूप से तीन शैलियों में ही विभक्त है यथा- नागर,द्राविड़ एवं बेसरशैली।

नागरं चतुरस्त्रं स्यादष्टास्त्रं द्राविड़न्तथा।

वृत्तञ्च बेसरं प्रोक्तमेतत्पीठाकृतिस्तथा ।।(मा.सा 53-27)

अर्थात् नागरशैली की चतुर्भुजा, द्राविड़शैली की अष्टभुजा, बेसरशैली वृत्त सदृश मन्दिर होते हैं, इन शैलियों के उत्तरोत्तर विकास से कालान्तर में विभिन्न प्रकार के देवप्रासाद विकसित हुए।

नागरं द्राविणं चैव वेसरं चेति तत् त्रिधा।।

प्रासादः सर्वदेवेषु तं देशं मधुनोच्यते।

सात्विकं नागरं तत्स्याद् राजसं द्राविडं स्मृतम्।।

तामसं वेसरं चेति त्रयं ब्रह्मादिदैवतम्।

त्रियुगं तत् त्रिवर्णं च त्रिचक्रं च क्रमात् स्मृतम्।। (शिल्परत्नम् 16.40-42)

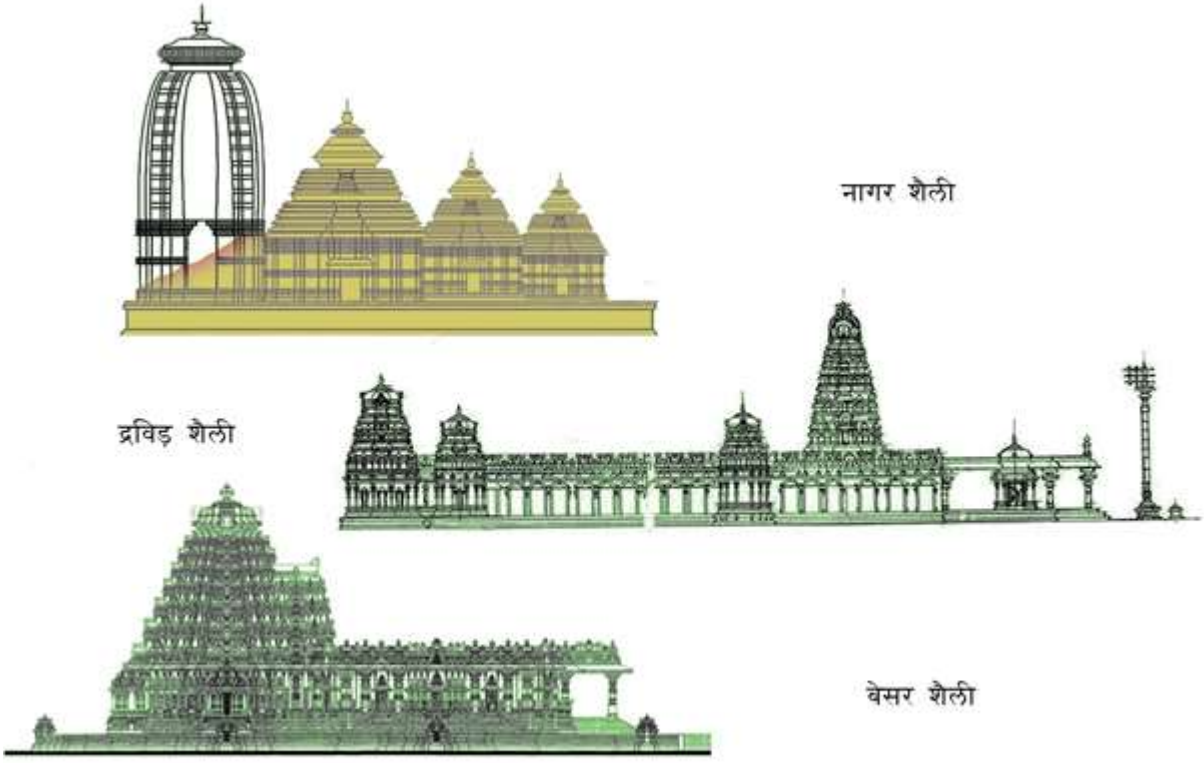

चित्र- मन्दिर की तीन शैलियों का पार्श्व दृश्य

शिखरशैली- यह शिखर शैली प्रायः सम्पूर्ण भारत में प्रचलन है, इस शैली का उल्लेख अग्निपुराण, मत्स्यपुराण एवं अन्य ग्रन्थों में उल्लेख है। यह नागरशैली के समान है, इसमें बाह्य दृष्टि से आठ अङ्गों की प्रधानता है, यथा मूलाधार, मसूरक, जङ्घा, कपोत, शिखरः, ग्रीवा, आमलक और कलश, इसी प्रकार मन्दिर के मुख्यभाग के मुख्यद्वार, मण्डप, शिखरादि का वर्णन है। मन्दिर का मूलाधार चतुरस्र, अष्टास्र, वर्तुल और सर्वतोभद्र होता है। मुख्य द्वार से लेकर गर्भगृह तक एवं मूलाधार से कलश पर्यन्त मान परिमाणादि वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध है। हिमाचल प्रदेश के कुल्लु जनपद के बजौरानामक स्थान पर विश्वेश्वरमहादेव का मन्दिर शिखरशैली उत्कृष्ट मन्दिर है। जे.एन. बनर्जी महोदय ने इसका निर्माण काल सातवीं या आठवीं शताब्दी का मानते हैं।

गुप्तकालीन मन्दिरों को मुख्यतः पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है- संधारा, निरंधारा, सर्वतोभद्रा, आयताकार मन्दिर व खोखली बेलनाकार ईंट का ढाँचायुक्त मन्दिर। गुप्तकाल के पश्चात मन्दिर निर्माण की तीन शैलियाँ विकसित हुई। नागर, द्रविड़ व बेसर शैली।

1. **नागर शैली-** के. पी. जायसवाल **के अनुसार यह** शैली आर्य-शैली का ही परिवर्धित रूप है। इस शैली का सर्वप्रथम प्रामाणिक उद्गाता गर्ग को माना गया है। इन्होंने नाग राजाओं के अधीन ई.पू. की प्रथम शताब्दी में गर्ग संहिता का प्रणयन किया। नागर शैली उत्तरी भारत में हिमालय से लेकर विन्ध्य प्रदेश के भू-भाग तक विस्तृत थी। मूलतः यह उत्तर भारतीय शैली है। इस शैली के मन्दिर वर्गाकार होते हैं। वर्गाकार गर्भगृह की ऊपरी बनावट ऊँची मीनार जैसी होती है। इनके शिखर की रेखाएँ तिरछी और चोटी की ओर झुकी होती है। गर्भगृह पर ऊँचे शिखर इस शैली की मुख्य विशेषता है। इन शिखरों की आकृति ऊपर की ओर क्रमशः कम होती जाती है। शिखर के ऊपर '**आमलक**' नामक बड़ा चक्र होता है, जिस पर स्थापित कलश का ऊपरी भाग नुकीला होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मन्दिर निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों और नियमों का उल्लेख है। नागर शैली की अनेक उपशैलियाँ भी विकसित हुई थीं, जैसे – पाल, ओड़िशा, खजुराहो, सोलंकी उपशैली आदि। नागर शैली को 8वीं से 13वीं सदी के मध्य उत्तर भारत में शासकों ने पर्याप्त संरक्षण दिया था। इस शैली में बने मन्दिरों को ओड़िशा में **कलिंग** गुजरात में **लाट** और हिमालयी क्षेत्र में 'पर्वतीय' कहा जाता है। कुछ नागर मन्दिरों का निर्माण पञ्चायतन शैली में भी किया गया था। पर्सी ब्राउन ने नागर-शैली को ही उत्तर-भारतीय आर्यशैली की संज्ञा दी है। (इ. आ., पृ. 113)

ध्यातव्य-
- मन्दिर के शिखर को उत्तर भारत में शिखर एवं दक्षिण भारत में विमान कहा जाता है।
- उत्तरी भारत में देवालयों का निर्माण सर्वप्रथम नगरों में होने के कारण इसे नागर शैली कहा गया था।

पञ्चायतन शैली- इस शैली में निर्मित मन्दिरों में एक मुख्य मन्दिर बीच में होता है तथा उसके चारों कोनों पर चार सहायक मन्दिर होते हैं। लक्ष्मण मन्दिर (खजुराहो), कन्दरिया महादेव मन्दिर (खजुराहो), श्रीदेव व्यमेश्वर मन्दिर (रत्नगिरी, महाराष्ट्र) आदि इसी शैली में निर्मित मन्दिर हैं।

शिल्पशास्त्रों के अनुसार नागर शैली के मन्दिरों के आठ प्रमुख अङ्ग हैं -

अधिष्ठान	-	मूल आधार जिस पर मन्दिर बनाया जाता है।
शिखर	-	मन्दिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भ-गृह का ऊपरी भाग।
कलश	-	शिखर का शीर्ष भाग, जो कलश ही या कलश के समान होता है ।
आमलक	-	शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का वर्तुलाकार भाग ।

ग्रीवा - शिखर का ऊपरी ढ़लवाँ भाग ।

कपोत - किसी द्वार, खिड़की, दीवार या स्तम्भ का ऊपरी छत से जुड़ा भाग।

मसूरक - नींव और दीवारों के बीच का भाग।

जंघा - दीवारें (विशेषकर गर्भगृह की)।

भारत में मन्दिर निर्माण की प्रमुख शैलियाँ

मन्दिर निर्माण से पूर्व सर्वप्रथम भूमि की आवश्यकता होती है। अतः भूमि के आकृति, रंग, गन्ध, प्लवन, स्पर्शादि, मिट्टी का परीक्षण करने के पश्चात् शुभमुहूर्त्त में का विचार करके दैविक शक्ति के संचार के लिए भूमि पूजन किया जाता है इसके पश्चात् मण्डप में शतपदवास्तु के मानक से प्रासाद, मण्डप का विधान तथा षण्णवचन्द्रपदवास्तु के मानक से कूप, वापी, तडाग और वन का निर्माण के लिए वास्तुपदविन्यास एवं शिलान्यास तथा वास्तोष्पति का पूजन किया जाता है। तत्पश्चात् देश भेद से शैलियों के अनुसार मन्दिर निर्माण का प्रबन्धन किया जाता है। जैसा कि वास्तुरत्नावली में कहा गया है- विश्वकर्मा से प्राप्त मानक ही कालान्तर में नागर-शैली के रूप में विकसित हुआ। इस वास्तुपरम्परा के प्राचीन आचार्यों में गर्ग का नाम आता है। वराहमिहिर भी इसी परम्परा के उद्गाता थे। मय-वास्तुकला को एक अनार्य-वास्तुकला के रूप में स्थापना मिली। मय-परम्परा के आदि आचार्यों में नग्नजित का उल्लेख प्रमुखता रखता है। आचार्य असुर का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। **अथ ह स्माह स्वर्जिन्नाग्नजितः । (शतपथ ब्राह्मण 8.1.4.10) जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति। आ दृळ्हां पुरं विविशुः ।। ऋग्वेद-5.19.2**

इस शैली के अन्य आचार्यों में शुक्र, नारद, भृगु आदि के नाम प्रमुखता से उल्लेखित किए गए हैं। दोनों ही वास्तु-पद्धतियों में आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया तथा शिल्पशास्त्र के अनेक ग्रन्थों का इस प्रकार निर्माण हुआ। विश्वकर्मा पद्धति का विवरण विश्वकर्मा-प्रकाश में मूलरूप से आता है। इस ग्रन्थ में विश्वकर्मा की मान्यताएँ बहुत कुछ सुरक्षित मिलती है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता, भोज का समराङ्गणसूत्रधार, हयशीर्ष-पाञ्चरात्र तथा गरुडपुराण इसी परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरी तरफ सुप्रभेदागम, शिल्परत्न, शुक्रनीति, आत्रेयसंहिता, मयमतम् तथा मानसार द्रविडशैली की वास्तुविद्याओं का उल्लेख करते हैं।

वावाट, भूमिज और **लाट** आदि शैलियों- इनमें लाट सम्बन्ध गुजरात शैली से है, यह शैली नागर शैली से ही विकसित हुई। इसकी सर्व प्रमुख विशेषता अलंकृति है जो मोढ़ेरा के सूर्य मन्दिर से सर्वधा पुष्ट होती है। 'वावाट' वैराट का अपभ्रंश है। वैराठी द्राविडी का ही अवान्तर विकास है। मैसूर में स्थित मन्दिर वैराठी शैली में ही बने हुए हैं।

नागरस्य स्मृतो देशे हिमवद्विन्ध्यमध्यगः।

द्राविडस्योचितो देशो द्राविडः स्यान्न चान्यथा।।

आगस्त्यविन्ध्यमध्यस्थो देशो वेसरसम्मतः।

सर्वाणि सर्वदेशेषु भवन्तीत्यपि केचन।।(शिल्परत्नम् 16.43-44)

2.7 उत्तर भारतीय (नागर) शैली में निर्मित प्रमुख मन्दिर-

जो मन्दिर मूल अधिष्ठान से लेकर शिखर पर्यन्त चौकोर बने हुए है, उनको नागर शैली के समझें और मूल या गलता पर्यन्त जो वृत्तात्मक रचना हो उसे वेसर शैली समझना चाहिए। यथा

मूलाद्याशिखरं युगाश्ररचितं गेहं स्मृतं नागरम्।।(शिल्परत्नम् 16.51)

मूलाद्वा गलतोऽथवा परिलसद्वृत्तात्मं वेसरं तेष्वेकम्।(शिल्परत्नम् 16.51)

मूल से लेकर स्तूपी तक जो प्रासाद चौकोर होते हैं, वे नागर शैली के होते हैं। वृत्तीय कर्ण वाले शिखर के हों उन्हें हर्म्य वेसर कहते हैं यथा-

जन्मादिस्तूपिपर्यन्तं युगाश्रं नागरं भवेत्। (शि.र. 16.52)

1. **महाकालेश्वर मंदिर-** शिव के द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग में एक है। यह मध्यप्रदेश राज्य के उज्जैन नगर में क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित हैं। योगिनीतन्त्र में वर्णन है कि यहाँ पर मौर्य एवं गुप्त राजवंश का राज्य था। पतंजलि के महाभाष्य में भी उज्जयिनी का उल्लेख है। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, गरुडपुराण, अग्निपुराण आदि पुराणों में, महाभारत और महाकवि कालिदास ने भी अपने ग्रन्थों मे वर्णन किया है। स्वयंभू दक्षिणाभिमुख लिङ्ग होने के कारण महाकालेश्वर प्रसिद्ध है। ऐसी मान्यता है कि महाकाल के दर्शन मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है तथा व्यक्ति की अकाल मृत्यु भी टल जाती है और महाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करने से जीवन सुखों से भर जाता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी उज्जयिनी के क्षेत्र का वर्णन किया है।

महाकालं नमस्कृत्य नरो मृत्यु न सोचयेत्।

मृतः कीटः पतंगो रूवा रुद्रस्यातुचरो भवेत्।। (स्कन्दपुराण-26.19)

गरुड़पुराण में कहा गया है कि महाकाल तीर्थ समग्र पापों का नाश कर मुक्ति प्रदान करता है। शिवपुराण में वर्णन है कि समस्त देहधारियों को मोक्ष प्रदान करने वाली एक प्रसिद्ध और अत्यन्त रमणीय अवन्ति नाम की नगरी है जो भगवान शिव को अत्यन्त प्रिय है।

चित्र- 2 महाकालेश्वर मन्दिर, उज्जैन

2. **सूर्य मन्दिर, मोढ़ेरा (गुजरात)-** इस मन्दिर का निर्माण भीमदेव प्रथम ने गुजरात के मेहसाना जिले में 1026 ई में नागर शैली में करवाया था। मन्दिर परिसर में एक जलकुण्ड है, जो सूर्य कुण्ड के नाम से जाना जाता है। चूंकि मन्दिर पूर्वाभिमुख है, इस कारण हर वर्ष विषुव के समय (21 मार्च और 23 सितम्बर) जब दिन-रात बराबर होते हैं, सूर्य की किरणें मुख्य मन्दिर पर पड़ती हैं।
3. **खजुराहो के मन्दिर (मध्यप्रदेश)-** इसका निर्माण चन्देल शासक धंगदेव द्वारा 954 ई में किया गया था। यह मन्दिर समूह खजुराहो (मध्यप्रदेश) में स्थित हैं। ये मन्दिर समूह देवगढ़ के दशावतार मन्दिर से लगभग 400 वर्ष बाद निर्मित हुए। यहाँ स्थित विभिन्न मन्दिरों का निर्माण चन्देल शासकों द्वारा किया गया। यहाँ स्थित लक्ष्मण मन्दिर विष्णु को समर्पित है। खजुराहो के मन्दिर समूहों में एक और प्रसिद्ध मन्दिर 'कंदरिया महादेव मन्दिर' है। यह मन्दिर भारतीय मन्दिर स्थापत्य की शैली की पराकाष्ठा है। इसका निर्माण भी चंदेल राजा धंगदेव द्वारा 999 ई. में करवाया गया था। यह खजुराहों के मन्दिरों में सबसे अधिक विकसित (सप्तरथ शैली) मन्दिर है। भगवान शिव का

चित्र- 3 खुजराहो के मन्दिर

यह मन्दिर 117 फुट ऊँचा व 117 फुट लम्बा एवं 66 फुट चौड़ा है। खजुराहों के मन्दिर अपनी कामोद्दीप एवं श्रृंगार प्रधान प्रतिमाओं के लिए भी बहुत प्रसिद्ध हैं।**सूर्य मन्दिर, कोणार्क (ओडिसा)-** नागर शैली में निर्मित यह विश्व प्रसिद्ध मन्दिर गंग वंश के नरसिंह देव प्रथम द्वारा बनवाया गया था, इसे ब्लैक पैगोडा भी कहा जाता है। इसका शिखर पीढ़ा देउल श्रेणी का है। सम्पूर्ण मन्दिर को बारह जोड़ी चक्रों वाले, सात घोड़ों से खींचे जाते सूर्य देव के रथ के रूप में बनाया गया हैं। कोणार्क

चित्र- 4 कोणार्क का सूर्य मन्दिर ओडिसा

का सूर्य मन्दिर, पुरी का जगन्नाथ मन्दिर एवं भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर मन्दिरों को स्वर्णिम त्रिभुज भी कहा जाता है।

4. **जगन्नाथ मन्दिर, पुरी (ओड़िशा)-** यह पुरी में स्थित प्रसिद्ध नागर शैली में निर्मित मन्दिर है, इसकी चारों दिशाओं में चार विशाल द्वार बनाए गए हैं। गर्भगृह में भगवान जगन्नाथ उनकी बहन सुभद्रा तथा भाई बलभद्र के काष्ठ के विग्रह बने हैं। इन विग्रहों को 8, 11 या 19 वर्ष पश्चात् धार्मिक उत्सव 'नवकलेवर' द्वारा परिवर्तित किया जाता है। नवकलेवर नीम के ऐसे वृक्ष की लकड़ी से होता है जिसमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म चिह्न प्राकृतिक रूप से बने हों। पुरी के जगन्नाथ मन्दिर की

चित्र- 10.5 जगन्नाथ मन्दिर, पुरी (ओड़िशा)

प्रसिद्धि प्रतिवर्ष निकलने वाली रथयात्रा से भी है।

5. **लिंगराज मन्दिर, भुवनेश्वर (ओड़िशा)-** यह प्रसिद्ध मन्दिर ओड़िशा की राजधानी भुवनेश्वर में स्थित है, इसका निर्माण 10वीं-11वीं सदी में किया गया था। यह मन्दिर भगवान शिव के रूप हरिहर को समर्पित है। यह उत्तर भारत के मन्दिरों में रचना-सौन्दर्य, शोभा और अलंकरण के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, इसमें 4 विशाल कक्ष है - देउल, जगमोहन, नरमण्डप तथा भोप मण्डप। मन्दिर का शिखर 160 मी. ऊँचा है। यह मन्दिर 520 फुट × 465 फुट के विशाल आयताकार प्रांगण में

स्थित है। प्रागंण के मध्य में अनेक लघु मन्दिरों का समूह है जिसे बौद्ध स्तूपों के चतुर्दिक निर्मित बौद्ध चैत्यग्रहों का अनुकरण कहा है।

दशावतार मन्दिर, ललितपुर (उत्तरप्रदेश)- दशावतार मन्दिर गुप्त संस्कृति का अनुपम उदाहरण

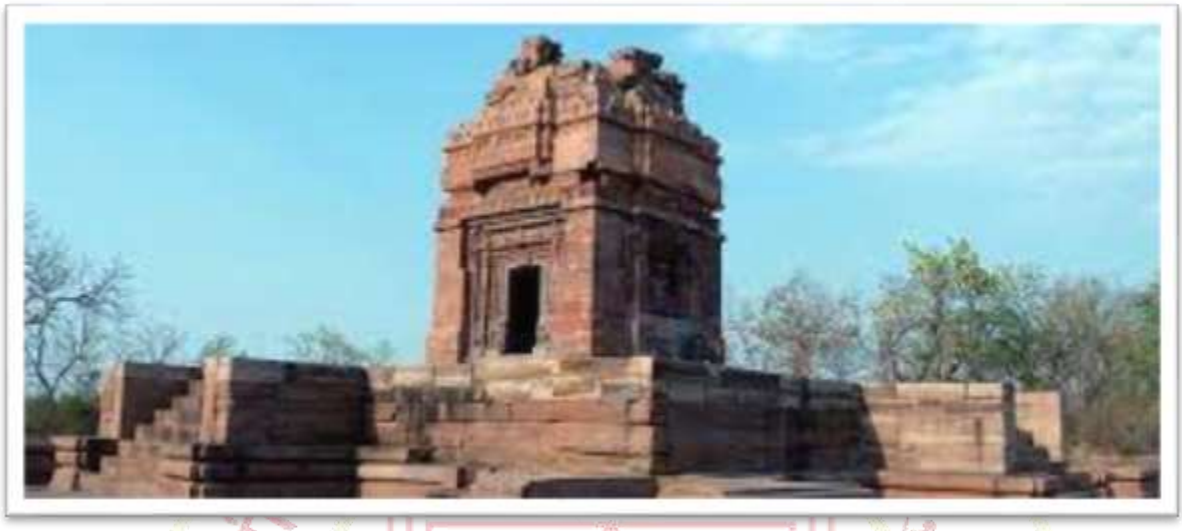

चित्र- 6 दशावतार मन्दिर, ललितपुर (उत्तरप्रदेश)

है। यह मन्दिर उत्तरप्रदेश प्रान्त के ललितपुर जिले में लाल बलुआ पत्थरों से लगभग छठी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में निर्मित हुआ। यह साँची और उदयगिरी (म.प्र) के छोटे मन्दिरों के लगभग 100 वर्षों बाद बना था। यह मन्दिर भी वास्तुकला की पञ्चायतन शैली में निर्मित है। इसके गर्भगृह तक पहुँचने के लिए चारों ओर सात सीढ़ियों से युक्त चार सोपान निर्मित हैं। इस मन्दिर में भगवान विष्णु के दश अवतारों की कथा नक्काशी के रूप में भी प्रदर्शित है। अतः इसे दशावतार मन्दिर कहते हैं। यह मन्दिर पश्चिमाभिमुख है जबकि अधिकांश मन्दिर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होते हैं।

1. **कामाख्या मन्दिर, गुवाहाटी (असम)-** असम में बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी की कालावधि में एक क्षेत्रीय शैली के विकास के प्रमाण मिलते हैं। यह शैली अपर वर्मा से प्रभावित ताई शैली एवं पूर्व प्रचलित पाल शैली के मिश्रण से अस्तित्व में आई और अहोम शैली के नाम से जानी जाती है। गुवाहाटी के निकट नीलाँचल पहाड़ी पर स्थित कामाख्या मन्दिर (शक्तिपीठ) इस शैली का उल्लेखनीय उदाहरण है। इस शैली की विशेषता बहुभुजी गुम्बदाकार शिखर है। इस मन्दिर में प्रतिवर्ष अम्बुवाची मेले का आयोजन किया जाता है। इसमें देशभर के तांत्रिक और अघोरी हिस्सा लेते हैं।

2.**राम मन्दिर अयोध्या (उत्तर प्रदेश)** श्री राम के जन्म समय से ही उनके इस जन्मस्थान पर भव्य राम मन्दिर था। आक्रमणकारी बाबर ने उस मन्दिर में मस्जिद बना दी थी लेकिन राम भक्तों की तपस्या रूपी परिश्रम से मन्दिर का पुनः निर्माण हुआ और 22 जनवरी 2024 को इसमें श्रीराम के बाल रूप में (रामलला) विग्रह की प्राणप्रतिष्ठा साधु- संतों सहित प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा की गई। मन्दिर की शिखर तक ऊँचाई 161 फुट है और पाँच मण्डप तथा बारह द्वार हैं।

चित्र- 7 राम मन्दिर अयोध्या (उत्तरप्रदेश)

3. **सोमनाथ मन्दिर, द्वारका (गुजरात)-** सोमनाथ मन्दिर काठियावाड़ क्षेत्र (गुजरात) में समुद्र किनारे स्थित है। यह मन्दिर भारत के 12 ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। धर्मग्रन्थों मे इसे प्रभास क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। महाभारत, श्रीमद्भागवत, स्कन्द पुराण आदि में सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग की महिमा का विस्तार से उल्लेख है। एक कथा के अनुसार चन्द्रमा (सोम) ने भगवान शिव को ही अपना नाथ (स्वामी) मानकर यहाँ तपस्या की थी इसलिए इसे सोमनाथ कहा जाता है।

ध्यातव्य -
- सोमनाथ मन्दिर का शिखर 150 फुट ओर ध्वजा 27 फुट ऊँचा है।

सर्वप्रथम यहाँ एक मन्दिर ईसा के पूर्व में अस्तित्व में था। दूसरी बार मन्दिर का पुनर्निर्माण 7वीं सदी में वल्लभी के मैत्रक राजाओं ने तथा तीसरी बार गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम ने 815 ई. में

पुनर्निर्माण करवाया था। अरब यात्री अलबरूनी ने अपने यात्रा- वृत्तांत में इस मन्दिर की महिमा का उल्लेख किया था, जिससे प्रभावित होकर 1024 ई. में महमूद गजनवी ने अपने 5000 साथियों के साथ सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण कर यहाँ से अथाह धन-सम्पत्ति लूटकर अपने साथ ले गया था। तदुपरान्त गुजरात के शासक भीम और मालवा के शासक भोज ने इसका पुनर्निर्माण करवाया था।सोमनाथ मन्दिर के वर्तमान स्वरूप का निर्माण लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने करवाया था। 1 दिसम्बर, 1955 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इसे राष्ट्र को समर्पित किया था।

2.8 दक्षिण भारतीय शैली के मन्दिर - द्रविड़ शैली का विकास एवं विस्तार दक्षिण भारत में हुआ है। । इस शैली के मन्दिर का आधार भाग वर्गाकार होता है। गर्भगृह के ऊपर का भाग सीधा पिरामिडनुमा बना रहता है, जिसमें अनेक मंजिले होती हैं। ये मन्दिर साधारणतः षट्कोणीय एवं अष्टकोणीय होते हैं। शिखर व गोपुरम् की महत्त्वपूर्ण अस्मिता होती है। ये गोपुरम् इतने ऊँचे होते है, कि अनेक बार मन्दिर का मुख्य शिखर गौण हो जाता है। शीर्ष स्तूपी की तरह होता है द्रविड़ शैली के मन्दिर नागर शैली के विपरीत एक चारदीवारी से घिरे होते हैं। इस चारदीवारी के मध्य में स्थित प्रवेश द्वारों को ही गोपुरम् कहते हैं। इस शैली में विशाल मन्दिरों के ऊपर रथ और विमान बने होते हैं। द्रविड़ शैली के मन्दिरों का निर्माण चोल, पांड्यों, पल्लवों और विजयनगर साम्राज्य के शासकों के शासन काल में हुआ था। इस शैली के अधिकांश मन्दिर तंजौर, मदुरै, काञ्ची, हम्पी, विजयनगर आदि स्थानों पर हैं। भौगोलिक दृष्टि से कृष्णा एवं तुङ्गभद्रा नदी से कुमारी अन्तरीप तक द्रविडशैली के मन्दिर निर्मित हैं। इसकी उपशैलियों को पल्लव, चोल, पांड्य, विजयनगर व नायक उपशैली के रूप में जाना जाता हैं। पर्सी ब्राउन के अनुसार द्रविड़शैली के अन्तर्गत 600 से 900 ई. तक पल्लवशैली का, 900 से 1150 ई. तक

चित्र- 8 मुदरै मीनाक्षी मन्दिर

चोलशैली का, 1150-1350 ई. तक पाण्ड्यशैली का, 1350-1565 ई. तक विजयनगरशैली का एवं 1600 ई. के आसपास मथुराशैली का विकास हुआ।(पर्सी इण्डियन आर्किटेक्चर पेज94)

द्रविड़ शैली में निर्मित प्रमुख मन्दिर-

ग्रीवा से लेकर शिखर जो प्रासाद षडाश्र एवं अष्टाश्र भेदित होता है उसे द्राविड़ कहते हैं यथा- **ग्रीवाद्याशिखरक्रियं षडुरगाश्रोद्भेदितं द्राविड़म्।** (शि.र.16.51) आठ कोणीय शिखर और कर्ण होते है, इन्हें द्राविड़ कहते हैं। यथा- **वस्वश्रं शीर्षकं कर्णं द्राविणँ भवनं विदुः।।**(शि.र.16.52)

वृत्तादि स्फुटित की रचना हाथियों की शूण्ड की सदृश तथा कुम्भ लता आदि चित्रण हो, हार के अन्तरवर्ती भाग मध्य एवं ऊँचा भाग छोटे कोष्ठों से निर्मित हो, वहाँ हाथी, भद्रनासिका या अल्पनासिका हों, जो कृमशः अन्तर सहित एकाधिक तल लिए हो, सिर की तरह आकृति में कर्ण, वृत्तीय या आठ कोणों से युक्त हों ऐसे प्रासादों को द्राविड़ शैली के कहा जाता है। यथा-

वृत्ताद्यस्फुटिकैर्हस्तितुण्डैः कुम्भलतादिभिः
हारान्तरेषु मध्योर्ध्वे क्षुद्रकोष्ठयुतं तु वा।।
तत्रैव हस्तितुण्डं वा भद्रनास्यल्पनासि वा।
निरन्तर सान्तरं वा ह्योकानेक तलं तु वा।।
शिरसो वर्तनं कर्ण वृत्तं वाष्टाश्रमेव वा।
इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं विमानं द्राविणं भवेत्।।(शि.र.16.63-65)

1. **मदुरै का मीनाक्षी मन्दिर (तमिलनाडु)-** मीनाक्षी मन्दिर तमिलनाडु प्रान्त के प्रसिद्ध नगर मदुरै में स्थित है। इस मन्दिर का मुख्य गर्भगृह 3500 वर्ष से अधिक पुराना माना जाता है, इसमें भव्य 12 गोपुरम् हैं, जिन पर महीन चित्रकारी की गई है। इस विशाल भव्य मन्दिर का स्थापत्य एवं वास्तु भी अत्यधिक रोचक है। इस मन्दिर से जुड़ा सबसे महत्त्वपूर्ण उत्सव है 'मीनाक्षी तिरूकल्याणम्' जिसका आयोजन चैत्र मास (अप्रैल के मध्य) में होता है। यह मन्दिर भारत के सबसे समृद्ध मन्दिरों में सम्मिलित है। पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार भगवान शिव सुंदरेश्वर रूप में अपने गणों के साथ पाण्ड्य राजा मलयध्वज की पुत्री राजकुमारी मीनाक्षी से विवाह रचाने मदुरै नगर आए थे। यह मन्दिर मीनाक्षी या मछली के आकार की आँख वाली देवी को समर्पित है। मछली पाण्ड्य राजाओं का राजचिन्ह थी।

2. **महाबलीपुरम् का तटीय मन्दिर (तमिलनाडु)-** महाबलीपुरम् का तटीय मन्दिर पल्लव राजा नरसिंह वर्मन द्वितीय (700-728 ई.) द्वारा बनवाया गया। यह मन्दिर बङ्गाल की खाड़ी के तट पर स्थित है इसलिए इसे तट मन्दिर कहा जाता है। यह मन्दिर दक्षिण भारत के प्राचीन मन्दिरों में गिना जाता है, जिसका सम्बन्ध 8वीं सदी से है। यहाँ तीन मन्दिर हैं- मध्य में भगवान विष्णु का मन्दिर है, और उसके दोनों ओर शिव मन्दिर हैं। विष्णु मन्दिर में विष्णु की मूर्ति अनन्तशयनम् रूप में स्थित है। यहाँ स्थित तीनों मन्दिरों में सबसे वृहद् भगवान शिव का पूर्वमुखी सिद्धेश्वर मन्दिर है। पश्चिममुखी मन्दिर अपेक्षाकृत छोटा है, जिसे राजसिंहेश्वर मन्दिर भी कहा जाता है। यहाँ 16 मुखी विशालकाय शिवलिंग है। सम्पूर्ण मन्दिर पाँच मंजिला है।

चित्र- 9 महाबलीपुरम् का तटीय मन्दिर (तमिलनाडु)

3. **तंजावुर का राजराजेश्वर मन्दिर (तमिलनाडु)-** यह मन्दिर तमिलनाडु के तंजौर में स्थित है। इसके गर्भगृह में एक विशाल शिवलिंग है। 1000 वर्षों से भी अधिक पुराना होने के बाद भी आज यह उत्कृष्ट अवस्था में है। चोल शासक राजराज प्रथम द्वारा इसका निर्माण 1003 -1010 ई. के मध्य करवाया गया। इस कारण इसे राजराजेश्वर मन्दिर नाम दिया गया था। 13 तल वाले इस मन्दिर की ऊँचाई लगभग 66 मीटर है। इसके निर्माण में लगभग 1,30,000 टन

ध्यातव्य-

- राजराजेश्वर मन्दिर में विशाल शिवलिंग के कारण इसे बृहदेश्वर नाम दिया गया है।

ध्यातव्य-

- राजराज चोल प्रथम द्वारा इस मन्दिर का नाम काछिपेटू पेरिया थिरूकात्राली (कांची पेटू का पत्थर मन्दिर) रखा था, जो कांचीपुरम का मूल नाम है। काञ्ची का कैलाशनाथ मन्दिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की ओर से संरक्षित स्मारकों की सूची में है।

ग्रेनाइट पत्थर का प्रयोग हुआ था। इसके आस-पास लगभग 60 किमी. तक न तो कोई पहाड़ है और न ही कोई चट्टान। कहा जाता है कि 3 हजार हाथियों की मदद से इन पत्थरों को यहाँ लाया गया था। इन पत्थरों को जोड़ने में किसी प्रकार के सीमेंट और चूना का उपयोग नहीं किया गया है बल्कि पत्थरों को **पजल तकनीक** से आपस में जोड़ा गया है।

4. **काञ्ची का कैलाशनाथ मन्दिर (तमिलनाडु)-** इस शिव मन्दिर का निर्माण कार्य 658 ई में राजसिंह द्वारा आरम्भ कर, राजा महेन्द्र वर्मन द्वारा 705 ई में पूर्ण करवाया था। लाल बलुआ पत्थर से निर्मित इस मन्दिर में मूल आराध्य शिव के चारों ओर सिंहवाहिनी देवी दुर्गा, विष्णु समेत कुल 58 देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के पीछे की दीवार में सोमस्कंद (केन्द्र में पुत्र मुरुगा के साथ भगवान शिव और उमा) की मूर्ति है। इस मन्दिर में एक बड़ा सोलह भुजाओं वाला शिवलिंग है, जो लगभग 8 फीट ऊँचा है।

5. **पट्टदकल का विरूपाक्ष मन्दिर (कर्नाटक)-** यह मन्दिर चालुक्य कालीन मन्दिरों का एक सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसका निर्माण विक्रमादित्य द्वितीय की रानी लोका महादेवी ने विक्रमादित्य के कांचीपुरम के पल्लव राजा पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में करवाया था। यह मन्दिर तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर हेमकूट पहाड़ी की तलहटी में स्थित नौ स्तरों और 50 मीटर ऊँचे गोपुरम वाला मन्दिर है। इस विशाल मन्दिर के अन्दर अनेक छोटे-छोटे मन्दिर हैं, जो विरूपाक्ष मन्दिर से भी प्राचीन हैं। इस मन्दिर को **'पंपापटी मन्दिर'** भी कहा जाता है। यहाँ स्थित एक अन्य महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थल **पापनाथ मन्दिर** है, जो भगवान शिव को समर्पित है।

चित्र- 10 पट्टडकल का विरूपाक्ष मन्दिर (कर्नाटक)

6. **पद्मनाभ स्वामी मन्दिर (केरल)-** यह मन्दिर भारत के केरल राज्य की राजधानी तिरूअनन्तपुरम् में स्थित भगवान विष्णु का विश्व प्रसिद्ध मन्दिर है। भारत के प्रमुख वैष्णव मन्दिरों में सम्मिलित यह ऐतिहासिक मन्दिर तिरूअनन्तपुरम् के अनेक पर्यटन स्थलों में से एक है। पद्मनाभ स्वामी मन्दिर विष्णु भक्तों की महत्त्वपूर्ण आराधना स्थली है। इस मन्दिर का निर्माण लगभग 10वीं सदी में हुआ था तथा इसका पुनर्निर्माण 1750 ई. में त्रावणकोर के शासक मार्तण्ड वर्मा ने करवाया था।

ध्यातव्य-
- श्री पद्मनाभ स्वामी मन्दिर में मुख्य प्रतिमा की लम्बाई अठारह फीट है। इस मन्दिर का गर्भगृह एक चट्टान पर स्थित है।

7. **कैलाश मन्दिर एलोरा महाराष्ट्र-** कैलाश मन्दिर द्रविड़ शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका निर्माण राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम द्वारा करवाया गया था। यह सम्पूर्ण मन्दिर एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। इस मन्दिर के निर्माण में लगभग 7000 श्रमिकों ने कार्य किया था। यह मन्दिर एलोरा की गुफा संख्या 16 में स्थित है। इस मन्दिर में कैलाश पर्वत की अनुकृति निर्मित की गई है। यह मन्दिर एक पहाड़ को शीर्ष से नीचे तक काटकर बनाया गया है।

ध्यातव्य-
- कैलाश मन्दिर एलोरा को द्रविड़ शैली का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

2.9 **मिश्रित (वेसर) शैली के मन्दिर -** यह शैली नागर व द्रविड़ शैली का मिश्रित रूप है। वेसर मन्दिर में भिन्न- भिन्न प्रकार के अधिष्ठान अथवा तलों वाले, प्रत्येक चरण में भेद से सहित सर्वत्र गोलपाद वाले होते हैं।

ध्यातव्य-
- बेसर शैली को चालुक्य, राष्ट्रकूट और होयसल वंशों के काल में संरक्षण प्राप्त हुआ था।

नानाधिष्ठानसंयुक्तं तलं प्रत्यङ्गभेदवत्।
सर्वत्र वृत्तपादं वा वेसरे भवने कुरु।।(शि.र.16.54)

चालुक्यों के समय शैली का विकास हुआ, इस शैली के मन्दिर विंध्याचल पर्वत से लेकर कृष्णा नदी तक पाए जाते हैं। यह शैली 7वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लोकप्रिय हुई और जिसका उल्लेख ग्रन्थों मे वेसर के नाम से किया गया है। दक्कन के दक्षिणी भाग अर्थात कर्नाटक में बेसर वास्तुकला की शैलियों के सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलते हैं। इस शैली के मन्दिरों की विशेषता बहुभुजी अथवा तारों की आकृति की आधार योजना है। एहोल (कर्नाटक) को मन्दिरों का नगर कहा जाता है। वर्तमान में भी यहाँ 70

मन्दिरों के अवशेष प्राप्त होते हैं। इनका निर्माण चालुक्य शासनकाल में 450-600 ई. के मध्य हुआ था। इस समय उत्तर में गुप्तों द्वारा मन्दिरों का निर्माण करवाया जा रहा था, जिस कारण आर्य शिखर शैली के लक्षण दक्षिण में भी पहुँचे थे। अतः एहोल के मन्दिरों में नागर एवं द्रविड़ शैलियों का मिश्रण मिलता है।

प्रासाद द्वार की दिशा के विषय में 'प्रासाद-मण्डन' में कहा गया है कि प्रासाद का यदि एक द्वार रखना हो, तो पूर्व दिशा में, दो द्वार रखने हो तो पूर्व-पश्चिम दिशा में, तीन द्वार रखने हों तो दो द्वार के बीच में मुख्य द्वार रखना चाहिए। दक्षिणाभिमुख मुख्यद्वार नहीं होना चाहिए। शिव, ब्रह्मा और जिनदेव इनके प्रासादों में चारों दिशाओं में द्वार रखे जाते हैं। पूर्व, उत्तर और दक्षिण; पूर्व, पश्चिम और उत्तर; तथा दक्षिण, पश्चिम व उत्तर इस प्रकार तीन प्रकार के त्रिद्वार प्रशस्त हैं। प्रासाद में यदि दो द्वार बनाने हों तो पूर्व और पश्चिम दिशा में निर्मित करने चाहिए। पूर्वदिशा का द्वार भक्ति देने वाला और पश्चिम दिशा का द्वार मुक्ति देने वाला माना गया है।

एकद्वारं भवेत् पूर्व द्विद्वारं पूर्वपश्चिमे ।
त्रिद्वारं मध्यजं द्वारं दक्षिणास्यं विवर्जयेत्॥
चतुर्दारं चतुर्दिक्षु शिवब्रह्मजिनालये।
होमशालायां कर्त्तव्यं क्वचिद् राजगृहे तथा ॥ (प्रा. म., अ.-5, 9-10)
नद्यां सिद्धाश्रमे तीर्थे पुरे ग्रामे च गहरे।
वापी-वाटी-तडागादि-स्थाने कार्य सुरालयम् ॥ (प्रा. म., 1,32)

2.10 मूर्ति विचार- प्रतिमा का अर्थ 'प्रतिरूप' है जो देवतत्त्व के चरणों में समर्पण है, इनमें वैदिक जीवन एवं विचारों के स्रोत मिलते हैं। प्रतिमा विज्ञान के लिए अंग्रेजी में 'आइकोनोग्राफी' (Iconography) शब्द प्रयुक्त होता है। 'आइकन' का अर्थ उस देवता या ऋषि के रूप से है जो मूर्तिकला द्वारा देवत्व पद दिया जाता है। ग्रीक भाषा में इसके लिए 'इकन' (Eiken) शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी अर्थ से समानता रखते हुए 'भारतीय अर्चा', विग्रह, 'तनु' तथा 'रूप' शब्द है। ऋग्वेद में भी प्रतिमा के हेतु 'अर्चा' शब्द का प्रयोग हुआ है। **महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन्। ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः॥** (3.54.2) प्रतिमा का प्रयोग वस्तुतः

उन्हीं मूर्तियों के लिए किया जाता है जो किसी धर्म से सम्बन्धित होती है। इन्हीं के माध्यम से भक्त एवं उपासक अपने भक्तिपूर्ण उद्‌गार अपने आराध्य देव को समर्पित करता है और भारतीय वेशभूषा, आभूषण, केशविन्यास आदि संस्कृति का जीवन्त उदाहरण मथुरा, साँची, अमरावती आदि में देख सकते हैं। **शिवपुराण विद्येश्वर संहिता** के अध्याय पाँच में सनत्कुमार और नंदिकेश्वर व्याख्यान में लिंग बेर अथवा मूर्ति की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन हैं।

हे प्रतिमा! आप सहस्त्रों, असंख्य, सर्वपदार्थों से युक्त इस विश्व का यथार्थ ज्ञान करनेवाले तथा सहस्त्रों पदार्थों का निर्माण करनेवाले हो। हे प्रतिमा! आप सहस्त्रों का प्रतिनिधि हैं। आप सहस्त्रों की तोल हैं एवं आप एक नहीं सहस्त्रों के तुल्य हैं, अत: आपको असंख्य मनुष्यों के सुख के लिए प्रोक्षित करता हूँ।

सहस्त्रस्य प्रमासि सहस्त्रस्य प्रतिमासि ।

सहस्त्रस्योन्मासि साहस्त्रोसि सहस्त्राय त्वा ॥ शु.य.15.65

शिल्प में जो भावना और कल्पना है, वही मूर्तिकला है।(गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 151) मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा में प्राप्त अवशेषों को देखने से ज्ञात होता है कि भारत में प्रतिमापूजा की उत्पत्ति बहुत प्राचीन काल से है। **गोपीनाथ राव** ने प्रतिमाओं को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया है- चल और अचल प्रतिमाएँ, पूर्ण और अपूर्ण प्रतिमाएँ, शान्त और अशान्त प्रतिमाएँ। चल प्रतिमाओं के निर्माण में ऐसे द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है, जो हल्के हो, इनमें धातु स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि होता है तथा ये प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। अचल प्रतिमाओं के निर्माण में पाषाण-प्रयोग स्वाभाविक है और वे बड़ी लम्बी और विशाल होती हैं।(गोपीनाथ राव-ऐलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकॉनोग्राफी, भाग1, पृ. 17) पुनः द्विजेन्द्रनाथ जी ने चल और अचल प्रतिमाओं में भेद किया है- (द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, भारतीय वास्तुकला, पृ. 195)

रामायण और महाभारत में उल्लेख है कि दुकूल, वस्त्र, पनसाकृति पात्रों से भरा हुआ उत्तम मधु, आम्राकृति पात्रों से भरा हुआ लाक्षारस, सिर, कान, ग्रीवा, बाहु तथा स्त्री एवं पुरुषों की मिथुन मूर्तियाँ का जन्म कल्पवृक्ष और कल्पलताओं से प्रदर्शित किया गया है।

चल प्रतिमाएँ

- ❖ कोतुक वेर प्रतिमा पूजन हेतु
- ❖ उत्सव वेर प्रतिमा उत्सव एवं पर्व विशेष पर नगर की यात्रा हेतु

- ❖ बलि वेर दैविक उपचारात्मक पूजा में उपहार हेतु
- ❖ स्नपन वेर स्नान हेतु

अचल प्रतिमाएँ-

ये प्रासाद गर्भगृह में सदैव प्रतिष्ठित रहती है। इनके निम्न भेद है-

- ❖ स्थान पर खड़ी हुई प्रतिमा
- ❖ आसन पर बैठी हुई प्रतिमा
- ❖ शयनावस्था में विश्राम करती हुई प्रतिमा

वैष्णव प्रतिमाएँ को ही इन मुद्राओं में विभाजित किया जा सकता है, अन्य देवताओं को नहीं। शयन देह मुद्रा विष्णु को छोड़कर अन्य किसी देवता के लिए प्रायः नहीं है।

वाहन अथवा आसन

जिस वाहन पर किसी प्रतिमा को बैठा या खड़ा दिखाया जाता है, उसे आसन कहते है। भारतीय मूर्तियाँ चौकी, सिंहासन, चट्टाई, गज, मृग अथवा व्याघ्र, चर्म, कमल, शिक्षा, पद्मपत्र, सुमेरु, पशु (हाथी, सिंह, अश्व, वृषभ, महिष, मृग, मेढा, शूकर, गधा, शार्दूल आदि) पक्षी (मयूर, हंस, उल्लूक, गरुड आदि) जलचर (मकर, मीन, कच्छप) आदि पर बैठी या खड़ी दिखाई जाती है। (हिन्दू आइकॉनोग्राफी- भाग1, पृ. 17)

आयुध

प्रतिमाओं के गुण या शक्ति प्रदर्शित करने के लिए उनकी भुजाओं की संख्या होती है। इन हाथों में स्थित प्रतीक शक्ति, क्रिया य गुण का प्रतीक होता है। शिल्पशास्त्र के ग्रन्थों के अनुसार देवताओं के 36 आयुध है जिनको प्रतिकृतियों में दिखाया जाता है। यथा चक्र, त्रिशूल, वज्र, धनुष, कृपाण, गदा, अङ्कुश, बाण, छुरी, दण्ड, शक्ति, (नोंकदार तलवार), मूसल, परशु (फरसा), भाला (कुन्त), रिष्टिका (कटार), खट्वांग (मूठदार डण्डा), मुशुंडी (छोटा नोंकदार डण्डा), कर्तिका (कैंची), कपाल, सूची (सूजा), खेट (ढाल), पाश (फंदा), सर्प, हल, मुग्दर, पान-पत्र,शङ्ख, श्रृंग, (बजाने वाला), घण्टा, खोपड़ी, माला, पुस्तक, कमण्डल, कमल, योगमुद्रा। (भारतीय मूर्ति कला का परिचय पृ.सं. 88)

प्रतिमा की मुद्रा

मूर्तियाँ आसन, शयन और स्थान तीन प्रकार से निर्मित किए जाते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय में योग, भोग, वीरा और अभिचारिका मुद्रा में भी प्रतिमाएँ बनाई जाती है। अधिकतर खड़ी हुई मूर्तियों की मुख्य मुद्राएँ होती हैं-

- ❖ समपाद दोनों पैर बराबर मिलाकर खड़े हुए
- ❖ अभङ्ग-कुछ तिरछे खड़े हुए
- ❖ त्रिभङ्गमस्तक, कमर और पैर तीनों में तिरछापन
- ❖ अतिभङ्ग - शरीर के सभी अवयवों में तिरछापन

इनके अतिरिक्त भी कई और मुद्राएँ हैं जो विशेष प्रकार की मूर्तियों में प्रयुक्त होती है। जैसे वराह की मुद्रा को 'आलिङ्य' मुद्रा कहते है। इसमें बायां पैर उठा हुआ, कटि कुछ तिरछी, सिर उठा हुआ, दाहिना नीचा हाथ अभय मुद्रा में होता है। (गोपीनाथ राव-ऐलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकॉनोग्राफी, भाग1, पृ.सं. 17)

- ❖ देवताओं से सम्बन्धित हस्तमुद्राएँ भी प्रमुख है-
- ❖ अभय दाहिनी खुली हथेली उठाते हुए
- ❖ वरद- दाएँ हाथ की खुली हथेली नीचे की ओर
- ❖ ध्यान मुद्रा में

ज्ञान मुद्रा-जुडी हुई या आडी दाहिनी हथेली में तर्जनी और अङ्गुष्ठ मिलाए हुए। बैठने वाले आसन पद्मासन,ब्रह्मा चतुर्मुख हैं। शिव को पञ्चानन, त्रिमूर्ति में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के मुख एक साथ होते हैं। देवताओं की हाथों की संख्या में भी अन्तर होता है। ब्रह्मा और विष्णु प्रायः चतुर्भुज दर्शाएँ जाते हैं। दुर्गा को अष्टभुजी रूप में प्रदर्शित किया जाता है। (नागर शैली के नए हिन्दू मन्दिर, पृ.सं. 25)

आभूषण वस्त्र-

देवताओं की पहचान उनके वस्त्र और आभूषणों द्वारा भी की जा सकती है। भारतीय स्थापत्य कला माङ्गल्य अलङ्करण प्रधान है। ये अलङ्करण तीन प्रकार के होते हैं- रेखाकृतिप्रधान, पत्रवल्लरी प्रधान एवं ईहामृग में प्रतिमाओं को विविध आभूषणों एवं वस्त्रों से भी सुशोभित करने की परम्परा है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर के वचन हैं-

देशानुरूप भूषणवेशालङ्कारमूर्तिभिः कार्या ।

प्रतिमा लक्षणयुक्ता सन्निहिता वृद्धिदा भवति ।।(बृ.सं.58.29)

देश कालानुसार समाज में आभूषणों एवं वस्त्रों की जो मनुष्यों एवं स्त्रियों में भूषण-पद्धतियाँ प्रचलित थीं, उन्हीं के अनुरूप देवों की मूर्तियों में भी उनकी परिकल्पना की गई। (प्रतिमा विज्ञान, पृ.सं.235)

अर्थात् विश्वरूपों के अन्दर स्थित ईश्वर के अध्यात्म रूप के ध्यान से ही आत्मशुद्धि होती है। जैसे अग्नि कक्ष में प्रवेश कर उसको जला देती, उसी प्रकार साधकों के अन्तकरण में प्रविष्ट होकर विष्णु भगवान् नकारात्मक शक्तियों को निवारण कर शुद्ध एवं आनन्दित कर देते है। अतः मूर्ति आध्यात्मिक श्रेष्ठता का मूर्त रूप है। जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है-

तद्रूपं विश्वरूपस्य तस्य योगयुजा नृप।

चिन्त्यमात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकिल्विषनाशनम्।।

यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः।

तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्विषम्।।(वि. पु.6.7.3-4)

नागर शैली के मन्दिरों के विभिन्न भाग

विश्वकर्मा-प्रकाश, मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण, बृहत्संहिता तथा समराङ्गणसूत्रधार बीस प्रकार के नागर-मन्दिरों का उल्लेख करते हैं। इनके नाम मेरु, मंदर, कैलाश, कुम्भ, मृगराज, गज, विमानच्छन्द, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वतोभद्रक, सिंह, नन्दन, नन्दिवर्धन, हंसक, वृष, गरुड़, पद्मक और समुद्र हैं।'

उत्तरकालीन नागर एवं लाट शैली के मन्दिरों की चर्चा भी मिलती है। इन मन्दिरों को 5 समूहों में वर्गीकृत किया गया है वैराज, कैलाश, पुष्पक, मणिक और त्रिविष्टप। वैराज नाम का प्रासाद चौकोर, कैलाश नामक प्रासाद गोल, पुष्पक नामक प्रासाद आयताकार, मणिक नामक प्रासाद अण्डाकार तथा त्रिविष्टप नामक प्रासाद अष्टकोणीय होता है।

बहु चयनात्मक प्रश्न-

1. रथ यात्रा के लिए प्रसिद्ध मन्दिर.....है।

   अ. सोमनाथ मन्दिर, द्वारका ब. जगन्नाथ मन्दिर, पुरी

   स. देलवाड़ा जैन मन्दिर, सिरोही द. सूर्य मन्दिर, कोणर्क

2. खजुराहो के मन्दिरों में प्रमुख विशेषता..... है।

अ. वल्लव शैली ब. चौल शैली

स. चालुक्य शैली द. कामोद्दीप एवं श्रृंगार प्रधान प्रतिमाएँ

3. निम्न में से गुप्तकाल के दशावतार मन्दिर के सम्बन्ध में असत्य कथन हैं -

अ. मन्दिरों की दीवारों पर विष्णु के दशावतार उत्कीर्णित हैं।

ब. मन्दिर आरम्भिक नागर शैली का प्रतिनिधित्व करता है।

स. यह पञ्चायतन शैली में निर्मित मन्दिर है।

द. यह मन्दिर पश्चिममुखी है।

4. कंदरिया महादेव मन्दिर ..... नगर में स्थित है।

अ. उज्जैन ब. खजुराहो

स. मैहर द. देवास

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. मन्दिरों के विषय में जानकारी..... द्वारा प्राप्त होती है। (शिलालेखों/सिक्कों)
2. मन्दिरों का नगर ..... को कहा जाता है। (मैसूर/एहोल)
3. बेसर शैली को ..... भी कहा जाता है। (चालुक्य शैली/राजपूत शैली)
4. पट्टदकल का विरूपाक्ष मन्दिर.....राज्य में है। (कर्नाटक/ केरल)

सत्य/असत्य बताइए -

1. द्रविड शैली का उद्भव पल्लव काल से माना जाता है। सत्य/असत्य
2. मन्दिर निर्माण की नागर शैली का सम्बन्ध दक्षिण भारत से है। सत्य/असत्य
3. नागर एवं द्रविड शैली के मिश्रित रूप को बेसर शैली कहते हैं। सत्य/असत्य
4. एहोल (कर्नाटक) को मन्दिरों का नगर कहा जाता है। सत्य/असत्य

सही-जोड़ी मिलान कीजिए-

1. पद्मनाभ स्वामी मन्दिर	क. राजस्थान
2. देलवाडा के जैन मन्दिर	ख. तमिलनाडु
3. राजराजेश्वर मन्दिर	ग. केरल

4. मोढेरा का सूर्य मन्दिर घ. गुजरात

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. बेसर शैली का अन्य नाम क्या है?
2. विमान से क्या आशय है?
3. प्रसिद्ध कोणार्क सूर्य मन्दिर कहाँ स्थित है? तथा इसका निर्माण किसने कराया ?
4. जगन्नाथ मन्दिर के गर्भगृह में किन-किन देवताओं के काष्ठ के विग्रह बने हुए हैं?
5. मीनाक्षी मन्दिर में कितने गोपुरम् हैं?
6. श्रीराम मन्दिर कहाँ पर स्थित है?

लघूत्तरीय प्रश्न-

1. नागर शैली पर टिप्पणी लिखिए।
2. विश्व प्रसिद्ध कामाख्या मन्दिर के बारे में वर्णन कीजिए?
3. पञ्चायतन शैली किसे कहते हैं?
4. काञ्ची के कैलाशनाथ मन्दिर के बारे में बताइए।
5. दशावतार मन्दिर कहाँ स्थित है? और उसमें किस देवता की मूर्ति है?

दीर्घोत्तरीय प्रश्न -

1. मन्दिर निर्माण की नागर शैली की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, इस शैली में बने सोमनाथ मन्दिर का वर्णन कीजिए।
2. मन्दिर निर्माण की द्रविड शैली की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, इस शैली में बने मीनाक्षी मन्दिर के बारे आप क्या जानते हैं?
3. मन्दिर प्रबन्धन क्यों जरूरी है? स्पष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य-

1. आपके क्षेत्र या राज्य में स्थित प्रसिद्ध मन्दिरों की स्थान सहित सूची बनाइए।

इकाई: 3, विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धति का महत्त्व

मनुष्य पूजा अथवा पूजन के द्वारा भगवान का अभिवादन करते हैं। मंदिर में दर्शन के साथ-साथ पूजन एवं भोग प्रसाद का भी विधान होता है, देव पूजन कर्मकांड से देवता के सत्कार हेतु किया जाता है। जैसे- आमन्त्रण के लिए आवाहन करना, आसन प्रदान करना, पाद- प्रक्षालन करना, आचमन कराना, स्नान कराना, वस्त्र देना, श्रृंगार करना, धूपदान तथा दीपदान करना एवं भोज्य पदार्थ अर्पित किया जाता है।

3.1 मन्दिरों में पूजा की विधियाँ-

देवताओं की पूजा की तीन पद्धतियाँ हैं- सर्वप्रथम देवताओं के लिए मंत्र जप, द्वितीय होम, तृतीय दान, चतुर्थ तप और पञ्चम वेदी, प्रतिमा या ब्राह्मण में देवों की भावना पूर्वक षोडशोपचार से पूजन करना।

- पञ्चोपचार - गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य।
- दशोपचार- पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य।
- षोडशोपचार- पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, स्तव-पाठ, तर्पण और नमस्कार।

सूर्य को पञ्चायतन देवों के मध्य में सूर्य, उसके प्रदक्षिणा क्रम से गणेश, विष्णु, चण्डीदेवी और महादेव को स्थापित करना चाहिए। साथ ही नवग्रह और बारह गणों की मूर्तियाँ भी स्थापित करनी चाहिए। गणेश के पञ्चायतन देवों में मध्य में गणेश, उसके प्रदक्षिणा क्रम से चण्डीदेवी, महादेव, विष्णु और सूर्य की स्थापना करनी चाहिए तथा बारह गणों की मूर्तियाँ भी स्थापित करनी चाहिए। विष्णु के पञ्चायतन देवों में-मध्य में विष्णु को स्थापित करके उसके प्रदक्षिण क्रम से गणेश, सूर्य, अम्बिका और शिव को स्थापित करना चाहिए। साथ ही गोपियों की और अवतारों की मूर्तियाँ तथा द्वारिका नगरी को स्थापित करना चाहिए। चण्डी देवी के पञ्चायतन देवों में मध्य में चण्डी देवी की स्थापना करके, उसके प्रदक्षिणा क्रम से महादेव, गणेश, सूर्य और विष्णु को स्थापित करना चाहिए। साथ ही मातृदेवी, चौंसठ योगिनी आदि देवियों और भैरव

आदि देवों की मूर्तियाँ भी स्थापित करनी चाहिए। शिव के पञ्चायतन देवों में मध्य में शिव, उसके प्रदक्षिणा क्रम से सूर्य, गणेश, चण्डी और विष्णु की प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

यथा- सूर्याद् गणेशो विष्णुश्च चण्डी शम्भुः प्रदक्षिणे।

भानोगृहे ग्रहास्तस्य गणा द्वादश मूर्त्तयः॥

गणेशस्य गृहे तद्वच्चण्डी शम्भुर्हरी रविः।

मूर्त्तयो द्वादशान्येऽपि गणाः स्थाप्या हिताश्च ये॥

विष्णोः प्रदक्षिणेनैव गणेशार्काम्बिकाशिवाः।

गोप्यस्त्रस्यावतारस्य मूर्त्तयो द्वारिकां तथा ॥

चण्डयाः शम्भुर्गणेशोऽर्को विष्णुः स्थाप्यः प्रदक्षिणे ।

मातरो मूर्त्तयो देव्या योगिन्यो भैरवादयः ॥

शम्भोः सूर्यो गणेशश्च चण्डी विष्णुः प्रदक्षिणे ।

स्थाप्याः सर्वे शिवस्थाने दृष्टिवेधविवर्जिताः ॥ (प्रा. म.2, 41-45)

- **अठारह प्रकार के उपचार**-आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य,आचमन, स्नान, वस्त्र-निवेदन, यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दर्पण, माला, अनुलेपन एवं नमस्कार।
- **तिरसठ प्रकार के उपचार**- आसन, अभ्यञ्जन, उद्वर्तन, निरुक्षण, सम्मार्जन, सर्पिःस्नपन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क, पुनराचमन, यज्ञोपवीत-वस्त्र, अलंकार, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, पुष्पमाला, अनुलेपन, शय्या, चामर, व्यंजन, आदर्श, नमस्कार, गायन, वादन, नर्तन, स्तुतिगान, हवन, प्रदक्षिणा, दन्तकाष्ठ और विसर्जन।
- **छासठ प्रकार के उपचार**- (शिवशक्ति पूजा में)- पाद्य, अर्घ्य, आसन, तैलाभ्यंग, भजनशालाप्रवेश, पीठोपवेशन, दिव्यस्नानीय, उद्वर्तन, उष्णोदक-स्नान, तीर्थाभिषेक, धौतवस्त्रपरिमार्जन, अरुण-दुकूलधारण, अरुणोत्तरीयधारण, आलेपमण्डपप्रवेश, पीठोपवेशन, चन्दनादि दिव्यगन्धानुलेपन, नानाविधपुष्पार्पण, भूषणमण्डपप्रवेश, भूषणमणिपीठोपवेशन, नवरत्नमुकुटधारण, चन्द्रशकल, सीमन्तसिन्दूर, तिलकरत्न, कालाञ्जन, कर्णपाली, नासाभरण, अधरयावक, ग्रथनभूषण, कनकचित्रपदक, महापदक, मुक्तावली, एकावली, देवच्छन्दक, केयूरचतुष्टय, वलयावली, ऊर्मिकावली, काञ्चीदाम-कटिसूत्र, शोभाखयाभरण, पादकटक,

रत्ननूपुर, पादांगुलीयक, चार हाथों में क्रमशः, अंकुश, पाश, पुण्ड्रेक्षुचाप, पुष्पबाण धारण, माणिक्यपादुका, सिंहासन-रोहण, पर्यङ्कोपवेशन, अमृतासवसेवन, आचमनीय, कर्पूरवटिका, आनन्दोल्लास-विलासहास, मंगलार्तिक, श्वेतच्छत्र, चामर-द्वय, दर्पण, तालवृन्त, गन्ध, 59० पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन और पुनराचमन।

- राजोपचार- षोडशोपचार के अतिरिक्त छत्र, चामर, पादुका तथा दर्पण। आदि प्रमुख पूजा की विधियाँ हैं।

ब्रह्मा और विष्णु ने भी भगवान् शिव का विधि विधान सहित पूजन किया। दीर्घ समय तक स्थिर रहनेवाली वस्थुओं को पुष्पवस्तु तथा अल्पावधि तक ही रहने वाली वस्तुओं को प्राकृत वस्तु कहते है। यथा-

तत्र संस्थाप्यतौ देवं सकुटुम्बं वरासने। पूजयामासतुः पूज्यं पुण्यैः पुरुषवस्तुभिः।।
पौरुषं प्राकृतं वस्तु ज्ञेयं दीर्घाल्पकालिकम्। हारनूपुरकेयूरकिरीटमणिकुण्डलैः।।
यज्ञ सूत्रोत्तरीय स्त्रक्षौममाल्याङ्गुलीयकैः। पुष्पताम्बूलकर्पूरचन्दनागुरुलेपनैः।।
धूपदीपसितच्छत्रव्यजनध्वजचामरैः। अन्यैर्दिव्योपहारैश्चवाङ्मनोतितवैभवैः।।
पतियोग्यैः पश्वलभ्यैस्तौसमर्चयतां पतिम्। यद्यच्छ्रेष्ठतमं वस्तुपतियोग्यं हितद्धजे।। शि. पु.वि.सं.9.1-6)

भगवान् श्री लक्ष्मी एवं वेङ्कटेश्वर जी की दिनचर्या-

प्रातः पाँच बजे उत्थापन आरती।

दन्त धावन- स्नान पंचामृत आदि से।

प्रातः 6 30 मंगल आरती, कर्पूर आरती।

अर्चना तुलसी पुष्प

प्रातः आठ बजे बाल भोग।

प्रातः 8:15 से 11:30 पर्यन्त भक्तों को दर्शन।

मध्याह्न 11:30 से 12:30 तक राजभोग आरती।

मध्याह्न 12:30 से चार बजे तक विश्राम।

सायं चार बजे उत्थापन आरती एवं फल भोग।

सायं सात बजे सेवा नैवेद्य।

रात्रि आठ बजे अर्चना, तुलसी, कर्पूर आरती।

रात्रि नौ बजे दूध प्रसाद तत्पश्चात् विश्राम तथा शयन। इसी प्रकार सामान्य परिवर्तन के अनुसार अन्य देवालयों व देवी- देवताओं की दिनचर्या होती है।

पूजा के प्रकार महाकालेश्वर मंन्दिर में निम्न पूजाओं का आयोजन होता है यथा-

सामान्य पूजा

शिव महिम्न पाठ

रुद्राभिषेक वैदिक पूजा

शिव महिम्न स्त्रोत

रुद्राभिषेक (11 अवतरण) रुद्र पाठ

11 ब्राह्मणों द्वारा लघु रुद्राभिषेक (121 पाठ)।

महारुद्राभिषेक

महामृत्युंजय जाप (1.25 लाख जाप)

भोग श्रृंगार आदि इसके अतिरिक्त वेदपरायण, शिवपुराण, विष्णुसहस्त्रनाम और श्रीमद्भागवतादि का आयोजन समय-समय पर होता रहता हैं।

आराधना का वैज्ञानिक महत्त्व- आराधना किसी भी प्रकार की हो सकती है, हम भारतीय सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए भी उपासना करते हैं जैसे- हवन या यज्ञ के समय बोले जाने वाले वैदिक मन्त्रों और आहुतियों से यज्ञवेदी से उठने वाली शक्ति से वायु शुद्ध होती है और मन एकाग्र होता है।

3.2. आराधना क्यों करते हैं?- शिव पुराण विद्येश्वर संहिता के पाँचवे अध्याय में सूतजी शौनकजी से कहते हैं कि श्रवण, मनन और कीर्तन बिना गुरु के संभव नहीं है क्योंकि गुरु मुख से सुनी हुई वाणी समस्त शंकाओं का निदान कर शिव से साक्षात्कार करा देती है लेकिन गुरु के अभाव में भगवान शिव की मूर्ति की स्थापना करके रोज उनकी आराधना करने से ही यह सब श्रवण, कीर्तन और मनन सुगम हो सकेगा। अतएव मानसिक शान्ति हेतु एवं शारीरिक और भौतिक इच्छित मनोकामनाओं और सुख के आशीर्वाद के लिए अपने इष्ट देव की आराधना करते हैं। यह हमारे दैनिक जीवन का नित्य कर्म भी है क्योंकि आत्मा रूपी ईश्वर सभी जीव-जन्तुओं में विद्यामान रहता है और उसके आशीर्वाद के विना हम तृण सदृश हैं। धर्म-अर्थ-काम- मोक्ष की सिद्धि भी बिना आराधाना के असंभव है। आराधना के फलस्वरूप ही अनेक मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। मनुष्य का मन अत्यधिक चंचल होता है मन को एकाग्र करने के लिए भी आराधना सर्वोत्तम कर्म है।

पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य बल्लभवम्।
प्रदानात्तस्य मे विष्णो अतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।
विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः।
चन्दार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।

परम ऐश्वर्यवाले शत्रुनाशक एवं अन्धकार निवारक परमात्मा का हम मनन करते हैं। इनकी स्तुति के ज्ञान से मुझको ज्ञान प्राप्त होता हैं। जो परमात्मा दानशील एवं सुकर्म करने वाले पुरुष के आवाहन पर आकर वह हमें कष्ट से मुक्त करते हैं।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः॥ (अथर्व.4.24.1)
बाह्मसंस्कारसंस्कृत ऋषीणां समानतां गच्छति।

दैवेनोत्तरसंस्कारेण संस्कृतो देवानां समतां गच्छति।।(सं.ग. पृ.9)

जगत में जो कुछ भी स्थावर- जङ्गम संसार है, वह सब ईश्वर के समान अनुभव करें। उसके प्रति त्याग भाव से पालन करना चाहिए।

ईशा वास्यमिदँ सर्वँयत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ (शु. य.40.1, ई. उ. अ 1)

वह परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान, देहररहित, अव्रण, स्नायुओं से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित, सर्वदा पवित्र और पापों से मुक्त, सर्वज्ञ सबके मनों का प्रेरित करनेवाला एवं स्वयम्भू अर्थात् स्वयं जायमान वह सदा विद्यमान अनादि स्वरूप है याथातथ्यतः सदा सनातन से चली आई प्रजाओं के लिए समस्त पंचभूतादि की रचता तथा उनका ज्ञान प्रदान करता है यथा-

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥(शु.यु.40.8)

जो असम्भूति एवं कार्यब्रह्म इन दोनों को साथ-साथ जानता है, वह कार्यब्रह्म की उपासना से मृत्यु को पार कर असम्भूति द्वारा अमरत्व प्राप्त करता है। यथा-

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।

विनाशेन मृत्युं तीर्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।(ईशावास्योपनिषद् 14)

शिवपुराण विद्येश्वर संहिता के ग्यारहवें अध्याय में वर्णन है कि जिस प्रकार दिन के प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन विभाग होते हैं उसी प्रकार कर्म व आराधना करनी चाहिए। जैसे कि प्रातःकाल में शास्त्र कर्म, मध्याह्न में सकाम कर्म और सायंकाल में शान्ति कर्म के लिए आराधना करनी चाहिए। इसी प्रकार रात्रि में भी चार प्रहर होते हैं, उनमें से बीच के दो प्रहर निशीथकाल कहलाते हैं- इस काल में पूजा करने से श्रेष्ठ फल मिलता है। वहीं तेरहवें अध्याय में वर्णन है किं कलयुग में प्रतिमा के पूजा से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

ध्यातव्य- देशी गाय का घी- दूध- दही, शक्कर, मधु आदि सामग्री उत्तम मानक से युक्त ही लेनी चाहिए।

3.3 अभिषेक का महत्त्व- अभिषेक यह सर्वोच्च देवता भगवान शिव को समर्पित धार्मिक अनुष्ठान है, जो शक्तिशाली मन्त्रों के उच्चारण द्वारा किया जाता है इसको करने वाले व्यक्ति पर शिव प्रसन्न होकर अपने आशीर्वाद उसकी

सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, अभिषेक से आत्मशुद्धि,, गंध चढ़ाने से पुण्य, नैवेद्य से आयु, धूप से धन की प्राप्ति, तांबूल से भोग और दीप से ज्ञान इस प्रकार अभिषेक से सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, जिससे पूजा करने वाले व्यक्ति का जीवन समृद्धि, खुशहाली से सुखी हो जाता है और नकारात्मक ऊर्जाओं का नाश कर देते हैं क्योंकि अग्नि, भूमि, नभ, तोय एवं वायु और शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध ये सब मनोवाच्छित कामनाओं के विषय हैं। जो जैसी आशा से पूजा और अभिषेक करता करता है, उसके अनुसार वे प्रवत्ति मार्गी एवं निवत्ति मार्गी का फल भगवान् शिव अवश्य प्रदान करते हैं। अर्थात् मनुष्य के शरीर की प्रकृति, बुद्धि, त्रिगुणात्मक अंहकार और पाँच तन्मात्राओं से उत्पत्ति होती है और यह तत्त्व अभिषेकादा से पुनः विकसित होकर नवीन ऊर्जा का संचार करते हैं और जो शिव जी का विधि विधान से अभिषेक व उपासना करता है, वह सभी पाप एवं शोकों से मुक्त होक इच्छित फल प्राप्त करता है। (शिव महापुराण अ. 16)

वैज्ञानिक मान्यता- पंचामृत घी, दूध, शक्कर, मधु , दही एवं शिव सूक्तम, रूद्र महिमा स्त्रोत्र, महामृत्युंजय मन्त्रजापादि मन्त्रों के साथ उच्चारण किया जाता है, इससे मन्त्रों की शक्ति से वातावरण में कंपन रूपी ऊर्जा उत्पन्न होती है, जो नकारात्म ऊर्जाओं को नष्ट कर उपासक के मन को शांति प्रदान कर उसके मन में उमंग और उल्लास से सकारात्मक ऊर्जा का विकास स्वतः ही कर देती है।

3.4 मूर्ति श्रृंगार का महत्त्व- सोलह श्रृंगार करने से घर एवं जीवन में सौभाग्य का मार्ग प्रशस्त होता है और जीवन खुशियाँ से भर जाता है और परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है अर्थात् गृह सुख और समृद्धि से युक्त होकर देवी- देवताओं की मूर्ति अखंड सौभाग्य का आशीर्वाद भी देती है, अतः भारतीय संस्कृति में सोलह श्रृंगार को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। ऋग्वेद में भी सौभाग्य हेतु सोलह श्रृंगारों के महत्त्व का वर्णन है।

3.5 भोग एवं आरती का महत्त्व- पूजन, यज्ञ एवं धार्मिक संस्कारों के पूजन के पश्चात् आरती करना अनिवार्य होता है। आरती करते समय, एक थाली में फूल, चंदन के साथ रुई और घी या कपूर की ज्योति से 'स्तुति' सहित भक्ति भाव से गाया जाता है। आरती के थाल को "ॐ" की आकृति में घुमाया जाता है, इसमें आरती करते समय आरती थाल को देवता के चरणों में चार बार, नाभि में दो बार, चेहरे पर एक बार तथा सम्पूर्ण तन पर सात बार घुमाया जाता है। आरती पूर्ण होने पर, थाल में रखे फूल देवता को अर्पित करके, कुमकुम से तिलक लगाया जाता है। इससे भक्त को भगवान की आराधना एवं आशीर्वाद से सकारात्मक ऊर्जा, मन को प्रकाशित करती है। अग्नि से यजमान प्रतिदिन निरन्तर बढ़ते हुए, यश, पुत्र और नौकर से अतिशय रूप से युक्त धन को प्राप्त करता है।यथा-

ध्यातव्य-भोग देशी गाय के घृत से निर्मित व फलादि एवं आरती की घी, धूपादि सामग्री गुणवत्तापूर्ण ही उपयोग में लेना चाहिए।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमम्।। (अग्निसूक्त1.3)

हे अग्नि! जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिए सुप्राप्य होता है, उसी प्रकार आप भी हमारे लिए सुप्राप्य बनें और हमें स्वस्थ रखने हेतु हमारे साथ रहो।यथा- **स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।।** (अग्निसूक्त1.9) वहीं गुड का दान करने से स्वादिष्ट भोजन की प्राप्ति होती है, घी और फल का दान पुष्टिकारक होता है तथा धान्य के धान से अन्न व धन की वृद्धि होती है। अतः हम जो भी प्रसाद भगवान के श्रद्धा से अर्पित करते है वे सभी किसी न किसी प्रकार से इन वस्तुओं से निर्मित दान हैं, भगवान् तृप्त होकर भक्त को अक्षय आशीर्वाद देते हैं। मयमत में उल्लेख है कि बुद्धिमान स्थपति को चन्दन और अगरु के जल से तथा समस्त गन्ध मिश्रण के जल से, कलश के जल से और कुश के जल से ऊपर से चारों ओर सम्प्रोक्षण कर संसार के स्वामी की स्तुति करना चाहिए, इसलिए प्रत्येक गृहस्वामी को भी अवश्य गृह देवालय में आरती करनी चाहिए यथा-

चन्दनागरुतोयेन सर्वगन्धोदकेन च। कलशोदैः कुशाम्भोभिरुपरिष्टात् समन्ततः।।

प्रोक्षयेत् स्थपतिः प्राज्ञो भुवनाधिपतिं जपेत्।। (**मयमतम्** 18.192)

हे अग्ने! सर्वव्यापक करुणामय परमात्मा! आप हमें धर्म के उपदेश मार्ग से विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिए सन्मार्ग से ले चलें। समस्त उत्तम ज्ञानों को एवं मार्गों को जानते हुए हम से कुटिल व्यवहार को दूर करें। आपको हमसब बहुत ही नम्रता पूर्वक प्रणाम और स्तुति करते हैं।

आरती का वैज्ञानिक महत्त्व - आरती के थाल में रुई, घी, कपूर, फूल, चंदन (पद्म पुराण) आदि का प्रयोग किया जाता है। यह सभी पूर्णतः शुद्ध एवं सात्विक पदार्थ हैं। जब एक रुई की वर्तिका को घी और कपूर के साथ जलती है, तो वातावरण को अपनी सुगंध की ऊर्जा से समाहित कर देती है जिससे आसपास के वातावरण से सकारात्मक ऊर्जा का संचार होने लगता है। शंख और घंटी बजाकर ईश्वर का स्मरण करने से, मन भगवान् की ओर एकाग्र हो जाता है। मन में चल रही योजनाओं का चिन्तन न होकर मन और तन सक्रिय हो जाता है और भक्त के तन के तन्त्रिका- तन्त्र से स्फूर्ति प्राप्त होकर सकारात्मक जीवन शक्ति प्राप्त होती है।

3.6 पूजा के लिए मूर्ति की आवश्यकता- सनातन परम्परा में देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ सामान्यतः दो सम्प्रदायों की होती हैं। वैष्णव सम्प्रदाय और शैव सम्प्रदाय। इनके अलावा गणेश, देवी आदि को मानने वाले सम्प्रदायों के देवी-देवताओं की भी प्रतिमाएँ होती है। हिन्दुओं द्वारा देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ न केवल मन्दिर और सार्वजनिक स्थानों में बल्कि घर में भी पूजी जाती हैं। प्रत्येक हिन्दू अपने घर में स्वयं के इष्ट देवता और कुलदेवी की प्रतिमा रखता है और विशेष उत्सवों पर सपरिवार उनकी पूजा करता हैं। प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ 'प्रतिरूप' होता है अर्थात् समान आकृति। अतः इसके लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है जैसे तनु, विग्रह, अर्चा, मूर्ति आदि। ऋग्वेद में भी प्रतिमा के लिए 'अर्चा' शब्द मिलता है।

प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्। विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः॥ (1.138.1)
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥ (1.54.3)

अर्थात् किसी धर्म से सम्बन्धित मूर्ति के लिए प्रतिमा शब्द प्रयुक्त होता है। यह पत्थर, मिट्टी, धातु अथवा कागज के चित्र इत्यादि की प्रतिमा को मध्यस्थ बनाकर हम सर्वव्यापी अनन्त शक्तियों और गुणों से सम्पन्न परमात्मा को अपने सम्मुख उपस्थित देखते हैं। निराकार ब्रह्म का मानस चित्र निर्माण करना कष्टसाध्य है। बड़े- बडे योगियों तत्ववेत्ताओं के लिए ही यह सम्भव है। किन्तु साधारण मनुष्यों के लिए तो वह नितान्त असम्भव है। भावुक भक्तों के लिए तो मूर्ति का आधार रहने से उपासना में सहज सहायता

मिलती है। मानस चिन्तन और एकाग्रता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रतीक रूप में मूर्ति-पूजा की योजना बनी है। साधक अपनी श्रद्धा के अनुसार भगवान की कोई भी मूर्ति चुन लेता है और साधना करने लगता है। उस मूर्ति को देखकर हमारी अन्तः चेतना ऐसा अनुभव करती है मानो साक्षात् भगवान से हमारा मिलन हो रहा है। बल्कि दुनिया में मौजूद सर्वोच्च ऊर्जा के साथ एक मजबूत भावनात्मक संबंध भी बढ़ाता है। व्यक्ति का मन अत्यधिक चंचल और नकारात्मक होता है। मन को एकाग्र करने के लिए किसी आधार का प्रयोग किया जाता है और अपने आपको जोड़ने तथा एकाग्रता के लिए मूर्ति का प्रयोग होता है मूर्ति पूजा से अभिलाषाएँ आसान और भावात्मक हो जाती हैं। मन को एकाग्र करने के लिए किसी आधार का प्रयोग किया जाता है और अपने आपको जोड़ने तथा एकाग्रता के लिए मूर्ति का प्रयोग होता है। भगवान की प्रतिमा को देखकर आपको एक विशेष संबंध का अनुभव हो सकता है। यह एक तरह का मानसिक एवं आध्यात्मिक संपर्क हो सकता है जो आपके दिनचर्या में सकारात्मक भावना उत्पन्न करता है। मन्दिर में शान्त एवं स्वच्छ वातावरण होता है और उस अच्छे वातावरण का प्रभाव हमारी उत्तम वृत्तियों को शक्ति प्रदान करता है। मंदिर के सात्विक वातावरण में कुप्रवृत्तियाँ स्वयं फीकी पड़ जाती हैं, इसमें देवता को मानवीय रूप में ईश्वरीय विग्रह माना जाता है, अत: उनके भोजन, शयन, जागरणादि की भी व्यवस्था की जाती है। सनातन संस्कृति में मूर्ति स्थापना का बहुत बड़ा महत्त्व है। शिवपुराण के सोलहवें अध्याय में वर्णन है कि जो गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, पार्वती की मूर्ति और शिवलिंग की नित्य पूजा करता है, उसकी सम्पूर्ण मनोकामनाएँ पूर्ण होती है।

प्रासाद-मण्डन में देव स्थापना के सन्दर्भ में वर्णन है कि मातृदेवता, गणेश, भैरव, चण्डी नवग्रह, और कुबेर, इन देवों को दक्षिणाभिमुख स्थापित करना चाहिए। हनुमान जी का मुख नैर्ऋत्य दिशाभिमुख होना चाहिए। अन्य किसी भी देवता का मुख दक्षिण दिशा में नहीं होना चाहिए और उत्तर में किसी भी देवता का मुख नही होना चाहिए। यथा-

पूर्वपरास्यदेवानां कुर्यान्नो दक्षिणोत्तरम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवार्केन्द्र-गुहाः पूर्वापराङ्मुखाः ॥
नगराभिमुखाः श्रेष्ठा मध्ये वाह्ये च देवताः ।
गणेशो धनदो लक्ष्मीः पुरद्वारे सुखावहाः॥

विघ्नेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशोग्रहास्तथा ।

मातरो धनदश्चैव शुभा दक्षिणदिङ्मुखाः ।।

नैर्ऋत्याभिमुखः कार्यो हनुमान् वानरेश्वरः ।

अन्ये विदिङ्मुखा देवा न कर्तव्याः कदाचन। (प्रा. म. 2, 37-40)

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, एव कार्तिकेय देवों को पूर्व और पश्चिमाभिमुख प्रतिष्ठा होनी चाहिए हैं। शिवलिङ्ग के सामने किसी भी देवता की स्थापना नहीं करना अर्थात् शिव के सामने शिव, ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा, विष्णु के सामने विष्णु, जिनदेव के सामने जिनदेव और सूर्य के सामने सूर्य, इस प्रकार आपस में स्वजातीय देव स्थापित किए जा सकते हैं। इसी प्रकार चण्डिका आदि देवी के सामने मातृदेवता, यक्ष, क्षेत्रपाल तथा भैरव आदि देव स्थापित किए जा सकते हैं। ब्रह्मा एवं विष्णु के देवालय आमने- सामने हों तो दोष नहीं होता, किन्तु शिव के सामने, दूसरे देवताओं का दृष्टिवेध दोषकारक होता है।

लिङ्गाग्रे तु न कर्त्तव्या अर्चारूपेण देवताः ।

प्रभानष्टा न भोगाय यथा तारा दिवाकरे।

शिवस्याग्रे शिवं कुर्याद् ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽग्रतः ।

विष्णोरग्रे भवेद् विष्णुर्जिने जिनो रवी रविः॥

ब्रह्मा विष्णुरेकनाभि-द्वर्द्धाभ्यां दोषो न विद्यते ।

शिवस्याग्रेऽन्यदेवस्य दृष्टिवेधे महद्भयम्॥

प्रसिद्धराजमार्गस्य प्राकारस्यान्तरेऽपि वा।

स्थापयेदन्यदेवांश्च तत्र दोषो न विद्यते।। (प्रा. म. 2, 28-31)

मूर्ति मूर्त रूप में होने के कारण आखें अमृत आनन्द से तृप्त होकर भावों को भी मूर्त रूप प्रदान करती है, इससे हृदय में अलौकिक सूक्ष्म रस उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियों के द्वारा मन को प्रफुल्लित कर देता है।

जो मनुष्य समस्त प्राणियों और प्राणरहित भूतों को भी परमात्मा में ही स्थित देखता है। वह विद्याभ्यास और धर्माचरण का साक्षात् कर लेता है और समस्त प्रकृति आदि पदार्थों में परमेश्वर को व्यापक समझ कर, तब वह संदेह नहीं करता है और अपने क्रियमाण कर्मों से सफलता प्राप्त करता है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानन्ततो न वि चिकित्सति॥ (शु. यु. 40.6)

इकाई: 4 मन्दिर में विभिन्न व्यवस्थाएँ

विशिष्ट उद्देश्यों की सफलता हेतु परिकल्पना द्वारा पूर्वानुमान, पूर्वयोजना, अभिप्रेरणा, नियोजन, संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के प्रयत्नों का समन्वय, मार्गदर्शन एवं उचित संसाधनों से संस्था का विकास करना एवं मानक अनुसार नियन्त्रण रखना ही प्रबन्धन है।

मन्दिर प्रबन्धक का प्रमुख उद्देश्य है कि मन्दिर का चहुँमुखी विकास करना होता एवं मन्दिर में आयोजित कार्यक्रम को विधिवत वैदिक पद्धति से सुनियोजित सफल बनाना है, इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्वों के नियोजन की आवश्कता होती है-

भौतिक तत्त्व- मन्दिर, देवता प्रतिष्ठा, पूजा विधान, यज्ञशाला, शास्त्रचर्चा भवन, पूजा सामग्री, जल व्यवस्था, प्रसाद व्यवस्था, श्रव्य एवं दृश्य सामग्री, फर्नीचरादि की व्यवस्था करना।

मानवीय तत्त्व- मन्दिर प्रबन्धक, प्रबंध कमिटी के सदस्य, पुजारी, मन्दिर न्यास के पदाधिकारी, प्रसिद्ध विद्वान्, अन्य कर्मचारी आदि।

वित्तीय तत्त्व- यह किसी वित्तीय मुद्दों जैसे अनुदान, मन्दिर की आय, मन्दिर के द्वारा आयोजित धार्मिक सम्मेलन, शास्त्रचर्चा, पूजादि सामग्री के व्यय का लेखा जोखा का प्रबन्धन।

सैद्धांतिक तत्त्व- धार्मिक कार्यों की समय सारणी, भगवान् की दैनिक दिनचर्या, दैनिक व्यवस्था, दर्शन-पूजा की समय सारणी, दर्शनार्थियों के लिए उचित व्यवस्था इत्यादि।

3.1. जल व्यवस्था- मुहूर्त्त चिन्तामणिकार के अनुसार भूमि के मध्य में कूप या जलभण्डार करने से ईशान्यादि दिशाओं में क्रमशः ईशान्य में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्यवृद्धि, आग्नेयकोण में पुत्र-नाश, दक्षिण दिशा में स्त्री विनाश, तथा नैऋत्य कोण में कूपादि गृहकर्ता को मृत्युदायक , पश्चिम में सम्पति लाभ, वायव्यकोण में शत्रु-पीड़ा एवं उत्तरदिशा में कूप अथवा जल भण्डारण करना सौख्य दायक होता है। **शिवपुराण** के अनुसार जो जलदान करता है वह अभीष्ट फल प्राप्त कर शिव को प्राप्त करता है। यथा-

कूपे वास्त्रोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः।

सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीड़ाशत्रुतः स्याच्च सौख्यम्।।

ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत्।

सम्पच्छ्युभयं सौख्यं पुष्टि प्रागादितः क्रमात् ॥ वशिष्ठ

4.2 जल निकास व्यवस्था- छत के ऊपर पानी की टंकियों के लिए दक्षिण अथवा पश्चिम दिशा शुभ है, प्रासाद मण्डन में प्रासाद से जल निकास की दिशा के विषय में वर्णन है कि पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली उत्तर दिशा में रखना शुभ है, उत्तर और दक्षिणाभिमुख प्रासाद की नाली पूर्व दिशा में रखनी चाहिए। यदि प्रासाद दक्षिणाभिमुख है तो बाएँ तथा उत्तराभिमुख है तो दाएँ ओर जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। इसी प्रकार मण्डप में जो देव स्थित है, उनमें मूलनायक के बाएँ ओर के देवों की बाएँ ओर तथा दाएँ ओर के देवों की नाली दाएँ ओर व्यवस्था शुभ होती है।

पूर्वापरमुखे द्वारे प्रणालं शुभमुत्तरे।

इति शास्त्रविचारोऽयमुत्तरास्या न देवताः ॥

मण्डपे ये स्थिता देवास्तेषां वामे च दक्षिणे ।

प्रणालं कारयेद् धीमान् जगत्यां च चतुर्दिशम् ॥ (प्रा. म. 2, 35-36)

4.3 प्रकाश व्यवस्था- सौर प्लान्ट, जनरेटर कक्ष, बिजली का मुख्य कक्ष आदि के लिए आग्नेय तथा पूर्व अथवा दक्षिण दिशा शुभ है।

4.4 स्वच्छता व्यवस्था- मंदिरों और तीर्थस्थलों में साफ- सफाई करने से मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है तथा मानसिकता रूप से स्वस्थ रहता है। जैसा कि पुराणों में वर्णन है कि भगवान के मंदिर की साफ-सफाई करने का फल यज्ञ, जप के अनुष्ठानों तुल्य है।

- मन्दिर की भूमि को जल से साफ- सफाई करने पर नीरोग व सर्व सुखों का उपभोग करता हुआ स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।
- मंदिर में साफ सफाई कर स्वस्तिक आदि चिह्न बनाता है, वह अनंत पुण्य का फल का भागी होता है।
- मंदिर की सफाई करते समय मनुष्य प्राण त्याग करता है तो वह सीधे ब्रह्मलोक को जाता है।
- नित्य देव मंदिर की सफाई करने से मनुष्य का स्वभाव निर्मल हो जाता है, मुख पर तेज आता, सुखी और दीर्घायु होता है।

शास्त्रों में पूजा के पाँच प्रकार बतलाए गए हैं-

(1) **अभिगमन**- भगवान के स्थान को साफ करना, पोंछा लगाना, निर्माल्य (चढ़ी हुई पूजा सामग्री) को हटाना, आदि को 'अभिगमन कहते हैं।

(2) **उपादान**- पूजा हेतु चंदन, पुष्प आदि नैवेद्य तैयार करना उपादान' है।

(3) **योग**- इष्टदेव की आत्मरूप से भावना करना 'योग' है।

(4) **स्वाध्याय**- मन्त्र-जप, स्तोत्र पाठ, कीर्तन और धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन ही स्वाध्याय है।

(5) **इज्या**- विभिन्न उपचारों (नैवेद्य) से अपने आराध्य की पूजा करना 'इज्या' है।

यह सभी कर्म श्रद्धापूर्वक किये जाने योग्य हैं लेकिन प्रबन्धक को चाहिए कि मन्दिर की साफ- सफाई के लिए उचित प्रबन्ध भी करें।

4.5 पूजन सामग्री व्यवस्था- देवालय में जो भी पूजन सामग्री उपयोग में ले, उसका विशेष ध्यान रखें कि वह सामग्री उत्तम मानकों से युक्त हो।

पंचामृत - घी, दूध, दही शहद, खांड़।

पंचगव्य – देशी गाय का गोबर, गौमूत्र, गौदुग्ध, देशी गाय का घी, गाय का दही।

पंचपल्लव - पीपल, आम, गूलर, बड़, अशोक।

पंचरत्न - माणिक्य, पन्ना, पुखराज, प्रवाल (मूँगा), मोती।

सप्तमृत्तिका - हाथी का स्थान, घोड़ा, दीमक, नदी का संगम, तालाब, गौशाला राजद्वार।

सप्तधान्य - उड़द, मूंग, गेहूँ, चना, जौ, चावल, कंगनी/ Foxtail millet.

सप्तधातु - सोना, चाँदी, ताम्बा, लोहा, राँगा, सीसा आदि।

अष्टमहादान - कपास, नमक, घी, सप्तधान्य, स्वर्ण, लोहा, भूमि, गौदान।

अष्टांग अर्घ्य - जल, पुष्प, कुशा का अग्रभाग, दही, चावल, केसर (कुमकुम रोली), दूर्वा, सुपारी, दक्षिणा।

दशमहादान - गौ, भूमि, तिल, स्वर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी, नमक ।

ध्यातव्य- देशी गाय का घी, खांड़ (शक्कर), सुपारी, हल्दी, दूर्वा, कपास, गेहूँ , जौ , उड़द एवं दाल, तिल, कलावा, आम की लकडी आदि। जो भी सामग्री लें वह गुणवत्तापूर्ण हो एवं हवन से पूर्व शुभ मुहूर्त्त में खरीदकर पुनः एक वार उसकी शुद्धता की जाँच भी करना चाहिए।

पंचोपचार - गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि।

रोली, पीला सिंदूर, पीला अष्टगंध चंदन, लाल चन्दन, लाल सिंदूर सफेद चंदन, हल्दी दोनों तरह की, सुपाड़ी, लौंग, इलायची, सर्वौषधि, सप्तमृत्तिका, सप्तधान्य, पीली सरसों, जनेऊ, इत्र, गरी का गोला ,पानी वाला नारियल, अक्षत, धूपबत्ती, रुई, देशी घी, सरसों का तेल, चमेली का तेल, कर्पूर, कलावा, चुनरी लाल एवं पीली, बताशा, अबीर गुलाल लाल, पीला, गुलाबी, हरा, अभ्रक, भस्म, गंगाजल, गुलाब जल, वस्त्र, पीला, सफेद, लाल, पीला वस्त्र, हरा, नीला, ध्वज, चांदी सिक्का, कुशा, लकड़ी की चौकी, रुद्राक्ष माला, तुलसी माला, दोना (पात्र) कलश, मिट्टी का प्याला, माचिस, हवन सामग्री, आम की समिधा, नवग्रह समिधा, तिल,जौ, गुड, कमलगट्टा, गुग्गल,धूप, सुगंध कोकिला, नागरमोथा, जटामांसी, अगर-तगर, इन्द्र जौ,बेलगूदा, सतावर, जावित्री, भोजपत्र, कस्तूरी, केसर, काला उड़द, मूंग दाल, शहद,पंचमेवा, पंचरत्न एवं पंचधातु, धोती, अगोंछा, सुहाग सामग्री- साड़ी, बिंदी, सिंदूर, चूड़ी, नाक की नथ, पायल, धोती ,कुर्ता, अंगोछा, पंच पात्र, दीपक, अगरबत्ती, लोटे-गिलास, कटोरी, चम्मच, परात, कैंची, बाल्टी, हवन वेदी, पुष्पमाला इत्यादि सामग्री की व्यवस्था मन्दिर में अवश्य करनी चाहिए। मय ने निर्देश दिया है कि गन्ध और पुष्पादि से अर्चना कर नैवेद्य प्रदान करना चाहिए। **अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यं च प्रदापयेत्। (मयमत 18.201)**

4.6 फल एवं फूल तथा दैनिक सामग्री की व्यवस्था- पान के पत्ते, आम के पत्ते, ऋतु फल, दूर्वा, शमी की पत्ती, कमल का फूल, फूल माला, गुलाब का फूल, गेंदा का फूल, तुलसी पौधा , तुलसी का दल, दूध, दही, मिष्ठान आदि सामग्रियों की प्रतिदिन व्यवस्था नितान्त आवश्यक है। यदि मन्दिर के क्षेत्र में ही बगीचा आदि लगाना हो तो मन्दिर के पूर्व, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में पूर्व में फलदार वृक्ष, दक्षिण दिशा में दूध वाले वृक्ष, पश्चिम अनेक प्रकार कमलों से सुशोभित और उत्तर दिशा में चीड़, ताड़ के वृक्ष तथा पुष्पवाले वृक्ष शुभ होते हैं।

भूमि पूजन हेतु सामग्री- मंगलकलश, आम के पत्ते, नारीयल, चौकी, अक्षत, रोली, गंगाजल, श्रीफल , पंचामृत, धूप ,दीपक ,अगरबत्ती, फूल, पुष्पमाला, कपूर, लौंग, इलायची आदि।

हवन सामग्री- हवन वेदी ,गोमय, दही, घी, खड़ी शक्कर ,सुपारी, हल्दी, दूर्वा, कपास, गेहूँ , जौ , उड़द एवं दाल, मूंगफली, कलावा, आम की लकडी आदि।

4.7 प्रसाद व्यवस्था, भगवान के लिए भोग तैयार करना आदि- पूजन के अवसर पर जो पंचामृत, फल, मेवा, लड्डू आदि देवी-देवताओं कों अर्पित की जाती है उसे 'नैवेद्य' (प्रसाद) कहते हैं।

देवी- देवताओं की आरती के पश्चात् पंचामृत के साथ फल, मेवादि का जो भी श्रद्धा से श्रद्धालुओं को वितरित किया जाता है, उन पदार्थों को 'प्रसाद' कहते हैं। देवी-देवता के हेतु हवन की अग्नि को अर्पित किए गए प्रसाद को 'हव्य' कहते हैं एवं किसी इष्टफल की प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली यज्ञ में पदार्थों की आहुति देने वाले प्रसाद को 'आहुति' कहा जाता है।

ध्यातव्य- पंचामृत, फल लड्डू आदि यथा शक्ति जो भी भगवान के लिए प्रसाद तैयार करें वह सामग्री गुणवत्तापूर्ण होनी चाहिए तथा प्रसाद तैयार करनेवाले भी स्नान-ध्यान और शुद्ध व स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर शुद्धता का ध्यान रखते हुए, मन्दिर में ही भोग का निर्माण करें।

जो भक्त मुझे पत्र, पुष्प, फल और जल जो भी कुछ वस्तु भक्तिपूर्वक देता है, उस प्रयतात्मा शुद्धबुद्धि भक्त के द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पण किए हुए पत्र- पुष्पादि को मैं ग्रहण करता हूँ। जैसा कि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।9.26।।

इससे प्रतीत होता है कि देवी- देवता भाव के भूखे होते हैं, फिर भी सर्व प्रथम देशकाल के अनुसार जो भी उपलब्ध हो तथा भाव ही प्रसाद माना जाता है लेकिन यहाँ हम सामान्य प्रसाद की चर्चा कर रहें हैं।

- श्रीकृष्ण भगवान् को माखन-मिश्री, खीर, हलुआ का नैवेद्य बहुत प्रिय है।
- गणेशजी को मोदक, मोतीचूर के लड्डू, बेसन के लड्डू, बूंदी के लड्डू, तिल के लड्डू और नारियल बहुत प्रिय है।
- विष्णु भगवान को खीर या सूजी के हलवे का नैवेद्य प्रिय है। खीर(दूध) अथवा हलवे(सूजी)का प्रसाद बनाते समय चिरौंजी , इलायची, किशमिश, बादाम, नारियल, काजू, पिस्ता, मखाना, केसर तुलसी एवं, मिश्री का मिश्रण करते हुए तैयार करें और विष्णु भगवान् को भोग लगाकर भक्तों के वितरित करें।

- शिव जी को पंचामृत का नैवेद्य प्रिय है। उनको दूध, दही, शहद, शकर, घी, से स्नान कराकर गंध, चंदन, बेलपत्र, फूल, रोली, वस्त्र, आरती के बाद शिवजी को रेवड़ी, मेवा और मिश्री का नैवेद्य लगाकर भक्तों को प्रसाद वितरित करना चाहिए।
- हनुमान जी को चोला चढ़ाकर तथा हलुआ, मेवा, बून्दी के लड्डू, पान और केसर भात बहुत प्रिय हैं। अतः उनको ये नैवेद्य अर्पित करें।
- लक्ष्मीजी को श्वेत व पीले रंग के मिष्ठान्न, घृत और अन्न से निर्मित प्रसाद बहुत प्रिय हैं।
- माँ दुर्गा को को खीर, मालपुआ, सूजी का हलुआ, उबला चना, नारियल, लौग, केला और मिष्ठान्न का नैवेद्य लगाना चाहिए।
- माता सरस्वती को पंचामृत, मक्खन, श्वेत तिल के लड्डु और फलों का नैवेद्य लगाना चाहिए।
- श्रीरामजी को केसर भात, खीर, धनिए की पंजीरी एवं कलाकंद बहुत प्रिय हैं।

इस प्रकार नैवेद्यो के बहुत प्रकार हैं परन्तु तैयार करते समय मानसिक और शारीरिक पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए।

इकाई:5 पञ्चाङ्ग का सामान्य परिचय

प्रस्तावना- पञ्चाङ्ग हमें सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान का ज्ञानवर्धन करता है। यही काल का दर्शक है। काल ही मानव के जीवन-मरण, इहलोक- परलोक, सुख- दुःख का नियामक है। अतः मनुष्य के जीवन को नियमित एवं सुव्यवस्थित मानक प्रदान करने के लिए आचार्यों ने पञ्चाङ्ग का निर्धारण किया, जिसमें समय के (पञ्च + अङ्ग) मानकों का वर्णन है यथा-वार, तिथि, नक्षत्र, योग एवं करण इन पाँच अङ्गों का उपयोग मुख्य रूप से होता है। अर्थात् ज्योतिषशास्त्र का का विवेचनात्मक स्वरूप ही है, इसमें सोलह संस्कारों का मुहूर्त्त , त्यौहारों, और प्राकृतिक घटनाओं के काल का शुभाशुभ निर्णय किया जाता है। गणना के आधार पर इसकी तीन धाराएँ हैं- पहली चन्द्र आधारित, दूसरी नक्षत्र आधा तीसरी सूर्य आधारित कैलेंडर पद्धति। विक्रम संवत के अनुसार एक वर्ष में 12 महीने होते हैं। प्रत्येक महीने में 15दिन के दो पक्ष होते हैं- शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। इसी प्रकार प्रत्येक साल में दो अयन होते हैं। इन दो अयनों की राशियों में भ्रमण करते रहते हैं। 12 मास का एक वर्ष और 7 दिन का एक सप्ताह होता है। मास सूर्य व चन्द्र की गतिमान पर भचक्र- भ्रमण में 12 राशियों के अनुसार बारह सौर मास हैं। अर्थात् जिस दिन सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है उसी दिन संक्रान्ति होती है। पूर्णिमा के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र में होता है उसी आधार पर महीनों का नामकरण हुआ है। सौर वर्ष से चन्द्र वर्ष 11 दिन 3 घड़ी 48 पल छोटा है। अतः प्रत्येक तीसरे वर्ष में एक मास के काल का मान अधिक हो जाता है, उसे अधिक मास कहते हैं। इसी आधार पर एक साल को बारह महीनों में विभाजित किया गया है। महीने को चंद्रमा की कलाओं के घटने और बढ़ने के आधार पर दो पक्षों शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में विभाजित किया गया है। एक पक्ष में लगभग पन्द्रह दिन व दो सप्ताह होते हैं।

दिन को चौबीस(24) घंटों के साथ-साथ आठ(8) पहरों में भी विभाजित किया गया है। एक प्रहर लगभग तीन घंटे का होता है। एक घंटे में लगभग दो घड़ी होती हैं, एक पल लगभग आधा मिनट के बराबर होता है और एक पल में चौबीस क्षण होते हैं। पहर के अनुसार देखा जाए तो चार पहर का दिन और चार पहर की रात होती है।

समस्त हिन्दू पञ्चाङ्ग चान्द्र-सौर कालगणना के सिद्धांतों और विधियों पर आधारित होते हैं।

एक सूर्यादय से दूसरे सूर्योदय तक का समय दिवस है, एक दिवस में एक दिन और एक रात होती हैं। दिवस के समय को 60 भागों में विभाजित किया गया है। इस प्रकार एक दिवस में 3600 पल होते हैं। एक दिवस में जब पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तो उसी कारण सूर्य विपरीत दिशा में घूमता प्रतीत होता है। 3600 पलों में सूर्य एक चक्कर पूरा करता है और इस प्रकार 3600 पलों में 360 अंश 10 पल में सूर्य का जितना कोण बदलता है उसे 1 अंश कहते है। पंचांगों में मास चन्द्रमा के अनुसार होता है।

चन्द्रमा की एक कला को तिथि माना जाता है जो उन्नीस घण्टे से 24 घण्टे की हो सकती है। अमावस्या के बाद प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों को शुक्लपक्ष तथा पूर्णिमा से अमावस्या तक की तिथियों को कृष्ण पक्ष कहते हैं।

तिथि - सूर्य-चन्द्रमा के भ्रमण से जब अन्तर द्वादशांश (12) होता तब एक तिथि होती है। मास में शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष दो पक्ष होते हैं तथा प्रत्येक पक्ष में 15 तिथि होती हैं। एक राशि में 30 अंश होते हैं। इस प्रकार अमावस्या से अमावस्या या पूर्णिमा से पूर्णिमा तक चक्कर लगाने के लिए चन्द्रमा को 30x12=360 अंश गति करनी पड़ेगी। इन 360 अंशों को 30 तिथियों में विभाजित करने पर एक तिथि में प्रायः 12 अंश होते हैं। इस प्रकार सूर्य से चन्द्रमा को 12 अंश आगे जाने को ही एक तिथि कहते हैं। सूर्य एवं चन्द्र के अमावस्या में समागम के बाद दोनों ग्रहों में उत्तरोत्तर दूरी में अन्तर आता जाता है। जब शीघ्र गतिमान चन्द्र 12 अंश तक जाता है, उस अन्तर को प्रतिपदा तिथि कहते हैं। इसी प्रकार 12-24 अंशान्तर को द्वितीया। उसी प्रकार क्रमशः 12-12 अंशों की वृद्धि से तिथियों का वृद्धि क्रम भी चलता रहता है और 168 से अन्ततोगत्वा, पूर्णिमा को सूर्य-चन्द्र में 180 अंश का अन्तर हो जाने पर पूर्ण चन्द्र दिखाई देता है और इसी के साथ शुक्ल पक्ष समाप्त हो जाता है। कृष्णपक्ष को चन्द्र के 180 से अंश 12 अंश न्यून करने पर 168 पर प्रतिपदा तथा प्रतिदिन 12 अंश क्षीण होने से द्वितीयादि तिथियों का निर्माण होने लगता है। इस प्रकार क्रमशः चन्द्र अपनी गति करते हुए चन्द्र 0 अंश पर पहुँच कर अमावस्या तिथि के साथ कृष्णपक्ष की समाप्ति होती है।

तिथियों के नाम – पूर्णिमा प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या।

इसे भी समझे- क्षेत्रीय भाषा में तिथियों के नाम - परिवा, दूज, तीज, चौथ, पंचमी, छठ, सातें, आठें, नौमी, दसमी, ग्यारस, द्वाशि, तेरस, चौदस, पौर्णमासी और अमावस।

प्रतिपदादि तिथियों के स्वामी-

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गहो रविः।

शिवो दुगन्तिको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी।।(मु.चि. शु.अ. प्र.3)

अग्नि, ब्रह्मा, गौरी, गणेश, सर्प, कार्तिकेय, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, विष्णु, कामदेव, शिव और चन्द्रमा ये क्रम से प्रतिपदादि तिथियों के स्वामी हैं।

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः।

सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः।। (मु.चि. शु.अ. प्र.4)

तिथि संज्ञा- शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की सभी तिथियों को नन्द्रा, भद्रा आदि संज्ञा दी गई हैं। यहाँ पूर्ण में पूर्णिमा और अमावस्या दोनों का ग्रहण करना चाहिए। ये तिथियाँ शुक्लपक्ष में पहले अशुभ,फिर मध्यम और फिर शुभ होती हैं। कृष्णपक्ष में पहले शुभ फिर मध्यम, अन्तिम अशुभ हैं।

तिथि संज्ञा संज्ञा बोधक चक्र-

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
प्रतिपदा,	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी
षष्ठी	सप्तमी	अष्टमी	नवमी	दशमी
एकादशी	द्वादशी	त्रयोदशी	चतुर्दशी	पूर्णिमा /अमावस्या

नन्दादि तिथियों के कर्तव्य कर्म-

नन्दा तिथियाँ- कृषि, गृह सम्बन्धित कार्य, उत्सव, वस्त्र और शिल्प सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।

भद्रा तिथियाँ – कला, वाहन सवारी, यात्रा, उपनयन, विवाह और आभूषण निर्माणादि कार्य करने चाहिए।

जया तिथियाँ – यात्रा, उत्सव, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, व्यापार, औषधि सेवन, सैन्य संगठन, सैनिक प्रशिक्षण, शस्त्र निर्माण और युद्ध सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।

रिक्ता तिथियाँ – अग्नि सम्बन्धित कार्य, शल्यक्रिया, शस्त्र प्रयोग, शत्रु दमन और शत्रुओं को गिरफ्तार करना आदि कार्य करने चाहिए।

इसे भी समझे- यदि तिथि द्वितीय सूर्योदय को स्पर्श करे तो तिथि वृद्धि परन्तु तिथि आरम्भ होकर द्वितीय सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो जाए तथा सूर्योदय से पहले दूसरी तिथि लग जाए तो तिथि क्षय समझे।

तिथि विचार- सूर्योदय के समय जो तिथि हो, उसमें ही पठन-पाठन, व्रतोपवास, देवकर्म, दान, प्रतिष्ठा, विवाहादि मांगलिक कार्य करने चाहिए। शरीर पर तैल- उवटन, जन्म-मरण तथा श्राद्ध में तात्कालिक तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए।

पूर्णा तिथियाँ – यज्ञोपवीत, विवाह, यात्रा, नृपाभिषेक तथा पौष्टिक कर्म करने चाहिए।

कुछ स्थानों पर पूर्णिमा से मास समाप्त होता है तो कुछ स्थानों पर अमावस्या से। पूर्णिमा से समाप्त होने वाला मास पूर्णिमान्त कहलाता है और अमावस्या से समाप्त होने वाला मास अमावस्यान्त कहलाता है। अतः अधिकांश स्थानों पर पूर्णिमान्त मास का ही प्रचलन है।

इस प्रकार चन्द्र मास में 30 तिथियाँ होती हैं। जो शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त पन्द्रह तिथि हैं। कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से अमावस्या तक पन्द्रह तिथि हैं।

प्रदोषकाल- चतुर्थी का प्रथम प्रहर, सप्तमी का प्रथम डेढ़ प्रहर एवं त्रयोदशी के प्रथम दो प्रहर का समय प्रदोष संज्ञक है जो शुभ कर्मों में वर्जित है।

ब्रह्मपुराण के अनुसार- षष्ठी एवं द्वादशी अर्द्ध रात्रि के एक घटी पूर्व तक हो तथा नौ घटी रात्रि तक तृतीया हो तो उसमे अध्ययन नहीं करना चाहिए।

निर्णयामृत के अनुसार - रात्रि में तीन प्रहर से पहले सप्तमी व त्रयोदशी हो तो प्रदोष होता है।

स्कन्दपुराण के अनुसार- सूर्यास्त के बाद छः घटी प्रदोषकाल होता है।

प्रतिपदादि तिथियों करने योग्य कार्य-

प्रतिपदा कृष्णपक्ष-गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन,चौलकर्म, उपनयन,यात्रा, विवाह, प्रतिष्ठा, शान्ति तथा पौष्टिक कार्य शुभ हैं।

द्वितीया- उपनयन,वास्तुकर्म, प्रतिष्ठा, यात्रा,विवाह मुहूर्त, आभूषण खरीदना, संगीत विद्या के लिए, देश व राज्य सम्बन्धी कार्य तथा वित्तीय कार्य आदि कार्य करना शुभ माना गया है। इस तिथि में तेल लगाना वर्जित है।

तृतीया- सीमन्तोन्नयन, चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, सगीत विद्या, शिल्पकला, गृह प्रवेश, विवाह, यात्रा, राजकार्य आदि शुभ कार्य करना चाहिए।

चतुर्थी- बिजली कार्य, शत्रु सम्बन्धित कार्य, अग्नि सम्बन्धी कार्य, शस्त्रों का प्रयोग करना आदि क्रूर कार्य शुभ माने जाते है।

पञ्चमी-समस्त शुभ कार्य, ऋण देना वर्जित है एवं चरस्थिरादि कार्य किए जा सकते हैं।

षष्ठी-युद्ध सम्बन्धित कार्य, शिल्प कार्य, वास्तुकर्म, गृहारम्भ, नवीन वस्त्र , तैलाभ्यंग, अभ्यंग, पितृकर्म, दातुन, आवागमन, काष्ठकर्म तथा पितृ कार्य वर्जित हैं।

सप्तमी- चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, विवाह, संगीत, आभूषणों का निर्माण और नवीन आभूषणों को धारण किया जा सकता है. यात्रा, वधुप्रवेश, गृहप्रवेश, राज्य संबंधी कार्य, वास्तुकर्म, संस्कार, आदि सभी शुभ तथा द्वितीया, तृतीया और पंचमी तिथियों में निर्दिष्ट कार्यों को करना चाहिए।

अष्टमी- युद्ध , अस्त्र-शस्त्र धारण, लेखन कार्य, वास्तुकार्य, शिल्प संबंधित कार्य, रत्नों से संबंधित कार्य, आमोद-प्रमोद तथा मनोरंजन सम्बन्धित कार्य करने चाहिए परन्तु मांस सेवन नहीं करना चाहिए।

नवमी- आखेट, शस्त्र निर्माण, झगड़ा करना, जुआ खेलना, मद्यपान एवं निर्माण कार्य तथा चतुर्थी तिथि में किए जाने वाले कार्य भी किए जाने चाहिए।

क्षय-वृद्धि तिथि विचार-क्षय-वृद्धि तिथियों में किए गए कार्य निष्फल हो जाते हैं।

दशमी -समस्त राजकार्य ,हाथी, घोड़ों तथा वाहनों संबंधित कार्य, विवाह, संगीत, वस्त्र, आभूषण, यात्रा ,गृह-प्रवेश, वधु-प्रवेश, शिल्प, अन्न प्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन संस्कार आदि कार्य ,द्वित्तीया, तृतीया, पंचमी तथा सप्तमी को किए जाने वाले कार्य कार्य शुभ है।

एकादशी- व्रतोपवास धार्मिक कार्य, देव उत्सव, वास्तुकर्म, युद्ध सम्बन्धित, शिल्प, यज्ञोपवीत, गृहारम्भ, यात्रा संबंधी, मद्यनिर्माण आदि शुभ कार्य किए जा सकते हैं।

द्वादशी- समस्त चर-स्थिर कार्य, उपनयन, विवाह, गाड़ी चलाना, सड़क निर्माण आदि शुभ कार्य किए जा सकते हैं लेकिन तैलमर्दन, नूतन गृह निर्माण-प्रवेश तथा यात्रा वर्जित हैं।

शुक्ल -त्रयोदशी- युद्ध कार्य, सेना, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज निर्माण, राजकार्य, वास्तु कार्य, संगीत, किए जा सकते हैं लेकिन इस तिथि में यात्रा, गृह प्रवेश, नवीन वस्त्राभूषण तथा यज्ञोपवीत आदि कार्य वर्ज्य है। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी तथा दशमी वर्णित कार्य किए जा सकते हैं।

चतुर्दशी- विष प्रयोग, शस्त्र धारण, क्रूर तथा उग्र कर्म करने चाहिए तथा चतुर्थी तिथि में किए जाने वाले कार्य किए जा सकते हैं लेकिन क्षौर तथा यात्रा करना वर्जित है।

पूर्णिमा- विवाह, यज्ञ, शिल्प, आभूषणों से संबंधित कार्य, वास्तुकर्म, संग्राम, जलाशय, यात्रा, शांतिक तथा पौष्टिक जैसे सभी मंगल कार्य किए जा सकते हैं।

अमावस्या- पितृकर्म, महादान करने चाहिए परन्तु अन्य शुभ कर्म नहीं करना चाहिए।

अमावस्या और पूर्णिमा का विशेष विचार - अमावस्या तिथि तीन प्रकार की होती है- सिनीवाली, दर्श और कुहू। प्रातःकाल से प्रारंभ होकर रात्रि पर्यन्त व्यापिनी अमावस्या **सिनीवाली** , चतुर्दशी से विद्धा **दर्श** तथा प्रतिपदा से युक्ता **कुहू** संज्ञक होती है।

इसी प्रकार पूर्णिमा की भी दो संज्ञाएँ होती है- अनुमति और राका। रात्रि को एक कलाहीन और दिन में पूर्णचन्द्र से सम्पन्न **अनुमति** संज्ञक चतुर्दशी से युक्त होती है और रात्रि में पूर्ण चन्द्र सहित पूर्णिमा, प्रतिपदा से युक्त **राका** होती है।

वार विचार- वारदोष , परिहार, भारतीय पञ्चाङ्ग विधान में सौर दिन को सावन दिन कहा जाता है। एक सूर्योदय से द्वितीय सूर्योदय होने के पूर्व समय को वार माना जाता है। सृष्टि का शुभारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा एवं रविवार से हुई अतः सप्ताह का आरम्भ सूर्य, चन्द्र,मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदि प्रमुख ग्रहों पर आधारित हैं।

वारों की ध्रुव, स्थिरादि संज्ञा- रविवार- चर और स्थिर संज्ञक है। अतः इस दिन नवीन वस्त्र धारण, यज्ञ, मन्त्रोपदेश, राज्याभिषेक, गीत, राज्यसेवा, औषधि क्रय, पशुओं का क्रय- विक्रय, सुवर्ण, रजत और ताम्र सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।

सोमवार- चर और चल संज्ञक हैं। इस दिन ग्रहारम्भ, कृषि कार्य, उद्यान, गाय- भैंस का क्रय-विक्रय, आभूषण निर्माण और गीत इत्यादि कार्य करने चाहिए।

इसे भी समझे- जो कार्य जिस वार में सम्पन्न नहीं हो सकें तो उस कार्य को उस वार की काल होरा में करना चाहिए।

कुजवार- उग्र और क्रूर संज्ञक है। इस दिन सन्धि- विच्छेद, सैन्य एवं युद्ध सामग्री का संग्रह, छल-कपट, सुवर्ण, मूंगा आदि से सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।

पूर्वाह्न में देवता पूजन, संस्कारादि एवं मांगलिक कर्म, मध्यान काल में अतिथि सत्कार व व्यावहारिक कार्य तथा अपराह्न में श्राद्धादि पितृ कार्य करने चाहिए।

बुधवार- मिश्र और साधरण संज्ञक है। इसमें अध्ययनारम्भ, साहित्य, सगीत, कला,पाणिग्रहण, धान्यसंग्रह और प्रतिमा निर्माण का कार्य करना चाहिए।

गुरुवार- यह लघु और क्षिप्र संज्ञक हैं। इस दिन यज्ञ, विद्यारम्भ, धार्मिक कृत्य, वाहन क्रय- विक्रय, पौष्टिक कर्म, औषधि कार्य, प्रवास- आरम्भ और आभूषण धारण करने चाहिए।

शुक्रवार- मृदु और मैत्री संज्ञक है। इस वार में कृषि कार्य, वाणिज्य कार्य, मैत्री, ऐश्वर्यवर्द्धक कार्य, नूतन वस्त्र- आभूषणों का धारण, स्त्रीविषयक कार्य, नृत्य, गीतादि कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

शनिवार- दारुण और तीक्ष्ण संज्ञक है। इस वार में यज्ञ के लिए काष्ठ संग्रह, नवीन वाहन क्रय- विक्रय, अस्त्र- शस्त्र कार्य, असत्य भाषण, छल-कपट, तस्करी आदि कार्य करना चाहिए।

वार दोषों का सामान्य उपाय- यदि कार्य उस वार में आवश्यक हो तो रविवार को ताम्बूल भक्षण एवं दान, सोमवार को चन्द्र लगाना व दान, कुजवार को भोजन एवं पुष्प दान, बुधवार को बुध मंत्र का जप, गुरुवार को शिवाराधना एवं भोजन दान, शुक्रवार को श्वेत वस्त्र दान व धारण, शनिवार को ब्राह्मण सेवा एव तैलस्नान करने के बाद कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

नक्षत्र -आकाश में स्थित तारा समूह को नक्षत्र कहते हैं। अर्थात् आकाश में स्थित तारा समूह ही नक्षत्र हैं और ये चन्द्रमा के पथ से जुडे हैं। आकाश का मान 360 अंश माना जाता है। इस भचक्र को 27 भागों मे विभाजित करने पर 13 अंश 20 कला का एक नक्षत्र का मान प्राप्त होता है तथा किसी समय पृथ्वी के जिस नक्षत्रपुञ्ज में चन्द्रमा दिखे उस समय वही नक्षत्र होता है। मूलत: 27 नक्षत्र होते हैं। 28 वां अभिजित (उत्तराषाढा के चतुर्थ चरण की अन्तिम 15 घटी एवं श्रवण नक्षत्र का प्रथम पाद की 4 घटी) नक्षत्र का मान होता है। चन्द्र उक्त सत्ताईस नक्षत्रों में भ्रमण करता है तथा एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं, प्रति चरण 3 अंश 20 कला का होता है।जैसा कि अथर्ववेद के 19वें काण्ड के 7वें सूक्त में 28 नक्षत्रों का वर्णन हैं।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ (अथर्ववेद.19.7.2,3.4.5)

1. कृत्तिका, 2. रोहिणी, 3. मृगशिरा, 4. आर्द्रा, 5. पुनर्वसु, 6. पुष्य, 7. आश्लेषा, 8. मघा, 9.पूर्वा-फल्गुनी, 10. उत्तरा फल्गुनी, 11. हस्त, 12. चित्रा, 13. स्वाति, 14. विशाखा, 15. अनुराधा, 16. ज्येष्ठा, 17. मूल, 18. पूर्वाषाढा, 19. उत्तराषाढा, 20. अभिजित्, 21. श्रवण, 22. श्रविष्ठा (धनिष्ठा), 23. शतभिषज् (शतभिषा), 25. दोनों प्रोष्ठपदा (पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद), 26 रेवती, 27. दो अश्वयुज् (अश्विनी) तथा 28. भरणी।

नक्षत्रसंज्ञा- स्वभाव के अनुसार नक्षत्रों के ध्रुव, चर, उग्र, मिश्र, लघु, मृदु और तीक्ष्ण ये सात भेद हैं।

ध्रुव एवं स्थिर नक्षत्र- रविवार के दिन रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद होने से बीजवपन, गृहप्रवेश, उद्यान, नगर प्रवेश, गायन आरम्भ, वस्त्र धारण, आभूषण निर्माण एवं धारण, शुभकार्य, नृत्य एवं मैत्री आदि कार्य उत्तम माने जाते हैं।

चर -चल नक्षत्र- सोमवार को पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा आदि नक्षत्रों में वाहन क्रय-विक्रय और प्रशिक्षण,यात्रा, कला, दुकान खोलना इत्यादि कार्यो को प्रारम्भ करना श्रेष्ठ है।

जन्म नक्षत्र में अन्नप्राशन, उपनयन और राज्याभिषेक आदि कार्य प्रशस्त हैं परन्तु सीमन्तोनयन, चूडाकरण, यात्रा, विवाह, औषधि सेवन एवं वादविवाद इन नक्षत्रों में वर्ज्य है।

उग्र एवं क्रूर नक्षत्र- मंगलवार को भरणी, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, और पूर्वाभाद्रपद यदि हो तो अग्नि कार्य, छल-कपट, यन्त्र- तंत्र का प्रयोग, पशु वशीकरण इत्यादि निन्दित कार्य उत्तम माने जाते हैं।

मिश्र एवं साधारण नक्षत्र- बुधवार को कृतिका, विशाखा यदि हो तो व्यापार, अग्नि कार्य, अपहरण,शस्त्र, विषघात और अग्निहोत्र कार्य उत्तम माने जाते हैं।

क्षिप्र एवं लघु नक्षत्र- गुरुवार को अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित, इत्यादि नक्षत्रों में से हो तो वस्तुओं का क्रय- विक्रय, साहित्य, संगीत, कला, चित्रकला, शास्त्राध्ययन-ज्ञानार्जन एवं वाहन कार्य, औषधि दान आदि कार्य श्रेष्ठ हैं।

मृदु – मैत्र नक्षत्र- मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती यदि शुक्रवार को हो तो गीत- वाद्य कार्य, गृह सम्बम्धी कार्य, बीजवपन, आभूषण निर्माण व धारण, क्रीड़ा, मित्रता और शपथ ग्रहण आदि कार्य कल्याणकारी माने जाते हैं।

तीक्ष्ण एवं दारुण नक्षत्र – आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, और मूल नक्षत्र अभिचार कर्म, मारण, उच्चाटन के लिए अनुष्ठान हाथी घोडों का व वाहन प्रशिक्षण,बीजवपन, पौष्टिक कर्म, विद्यारम्भ, मनोरंजक कार्य करने चाहिए।

अब इसका वर्गीकरण मुख ज्ञान के आधार पर तीन श्रेणियों में करेंगे-

ऊर्ध्व मुख नक्षत्र -रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद ऊर्ध्वमुख नक्षत्र कहलाते हैं। इसमें देवालय निर्माण, गृह निर्माण, ध्वजारोहण, बगीचा निर्माण, यात्रा, राज्याभिषेक, और समस्त मांगलिक कार्य अभीष्ट फल देते हैं।

अधोमुख नक्षत्र -भरणी, कृतिका, आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, विशाखा, मूल, पूर्वाषाढ़ा एवं पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र अधोमुख हैं। इसमें गणित, ज्योतिष, शिल्पकला का अध्ययन, रेलगाडी सुरंग, कूप, तालाब, खान, नलकूप, नींव का खनन, गड़े द्रव्य का निष्कासन पशुओं का क्रय-विक्रय, वाहन क्रय- विक्रय तथा प्रशिक्षण आदि कार्य उत्तम माने जाते हैं।

तिर्यङ्-पार्श्वमुख नक्षत्र -अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा और रेवती पार्श्वमुख नक्षत्र हैं, इसमें पशुओं का क्रय-विक्रय, वाहन क्रय- विक्रय व निर्माण तथा प्रशिक्षण, खेत में हल चलाना, यात्रा व पत्र व्यवहार के कार्य में उत्तम माने जाते हैं।

पञ्चक विचार- धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती आदि पाँच नक्षत्र अनेक कार्यों में वर्ज्य हैं। इन नक्षत्रों में दक्षिण दिशा की यात्रा, प्रेतकार्य, काष्ठक्षेदन- काष्ठसंचय, पलंग निर्माण, ताम्बा एवं पीतल का संचय सर्वदा वर्ज्य है।

सुवर्णपाद नक्षत्र -रेवती, अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, सुवर्णपाद नक्षत्र हैं, इनका फल सर्व सौख्यप्रद है।

रजतपाद नक्षत्र -आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पू. फाल्गुनी, उ. फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, ये रजतपाद नक्षत्र कहलाते हैं। इनका फल सौभाग्यदायक है।

लौहपाद नक्षत्र -विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, लौहपाद नक्षत्र हैं, इनका फल धनहानि है।

ताम्रपाद नक्षत्र- उ.षा., पू.षा., श्रवण, धनिष्ठा, शतमिषा, पू.भा., उ.भा. ताम्रपाद कहलाते हैं। इनका फल शुभ है।

चोरी गत वस्तुओं का लाभालाभ विचार-

अन्धाक्ष नक्षत्र	मध्याक्ष नक्षत्र	मन्दाक्ष नक्षत्र	सुलोचन नक्षत्र
रोहिणी, पुष्य, उ.फाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, रेवती	भरणी, आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित, पूर्वाभाद्रपद	अश्वनी, मृगशिरा, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, शतभिषा	कृतिका, पुनर्वसु, पूर्वा फा. स्वाती, मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपद
पूर्व दिशा में शीघ्र लाभ।	पश्चिम दिशा में ज्ञात होने पर भी प्राप्ति नहीं।	दक्षिण दिशा में प्रयास से मिले	उत्तर दिशा में तथा प्राप्ति नहीं होती।

जैसा कि मुहूर्तचिन्तामणि में कहा गया है-

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमान्त्याभिधं

मन्दाक्षं रविविश्वमित्रजलपाश्लेषाश्विचान्द्रं भवेत् ।

मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणात्वष्ट्रेन्द्रविध्यन्तक

स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षो भगम् ।।(न.प्र.22)

यदि आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल शनिवार को हो तो निन्दित कार्य उत्तम माना जाता है।

योग- सूर्य-चन्द्रमा की गति-योग ही 'योग' होता है। योग 27 प्रकार के होते हैं। चन्द्रमा और सूर्य दोनों मिलकर जितने समय में एक नक्षत्र के बराबर दूरी तय करते हैं उसे योग कहते हैं, क्योंकि चन्द्रमा और सूर्य की दूरी ही योग है । ग्रहों की विशेष स्थितियों को भी योग कहा जाता है। तारामण्डल में चन्द्रमा के पथ को 27 भागों में विभाजित किया गया है, प्रत्येक भाग को नक्षत्र कहा गया है।जब सूर्य और चन्द्रमा की गति में 13^{o} 20′ का अन्तर होने से एक योग बनता है। इस प्रकार तारामण्डल का 13^{o} अंश 20' का एक भाग नक्षत्र है। इस प्रकार दूरियों के आधार पर बनने वाले 27 योगों के नाम क्रमश: निम्नलिखित हैं- विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, इन्द्र और वैधृति। इन 27 योगों में से कुल 9 योगों को अशुभ माना जाता है और उनमें सभी प्रकार के शुभ कार्यों को नहीं करना चाहिए। यथा- विष्कुम्भ, अतिगण्ड, शूल, गण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ और वैधृति। - **विष्कुम्भादि, शुभाशुभ विचार एवं अपवाद।**

करण विचार- तिथि का आधा करण होता है अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं- एक पूर्वार्ध में तथा एक उत्तरार्ध में। कृष्णपक्ष चतुर्दशी के उत्तरार्ध से करणों की प्रवृत्ति होती है।

करण के प्रकार- दो प्रकार के करण होते हैं- (1) चर करण (2) स्थिर करण ।

स्थिर करण- स्थिर करण 4 होते हैं- शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न। कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पाद, अमावस्या के उत्तरार्ध में नाग और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण होता है।

बव करण में पौष्टिक, बालव में पठन, पाठन, यज्ञ एवं दानादि कर्म कौलव-तैलिल में मैत्री व स्त्रीविषयक, गर में बीजारोपण व हलप्रवहण, वणिज में व्यापारिक, विष्टि में युद्ध व क्रूर कर्म, शकुनि में ओषधि निर्माण, उपयोग व सिद्धि, चतुष्पद में राज्य कार्य व अन्य शुभ कर्म और किंस्तुघ्न करण में शुभ कार्य प्रशस्त होते हैं।

चर करण - चर करण 7 होते हैं- यथा- बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्ध से बव आदि चर करण होते हैं। प्रतिपदा के उत्तरार्ध में बव, द्वितीया के पूर्वार्ध में बालव तथा उत्तरार्ध में कौलव इस प्रकार बव, बालव, कौलव,तैतिल, गर, वाणिज और विष्टि सात करणों की प्रवृत्ति होती है। यथा सूर्यसिद्धान्त में-

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीय तु चतुष्पदम् ।
किस्तुघ्नतु चतुर्दश्या: कृष्णायाश्चापरार्धत: ॥
बवादीनि तत: सप्त चराख्यकरणानि च।
मासे उष्टकृत्व एकेकं करणानां प्रवर्तते ॥
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत् ।
एषा स्फूटगति: प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम्॥ (स्पष्टाधिकार.67-69)

भद्राविचार- विष्टि करण को भद्रा कहते हैं। भद्रा में शुभ कार्य वर्जित माने गए हैं। मास के कुल आठ तिथियों में भद्रा करण का वास होता है। शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि तथा पूर्णिमा का पूर्वार्द्ध, चतुर्थी तिथि एवं एकादशी का उत्तरार्द्ध, कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि एवं दशमी का उत्तरार्द्ध, सप्तमी तिथि और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा का वास माना जाता है। इन आठ तिथियों में वास करने वाली भद्रा का अलग- अलग नामकरण किया गया है तथा ये क्रमशः कराली, नन्दिनी, रौद्री, सुमुखी, दुर्मुखी, त्रिशिरा, वैष्णवी तथा हंसी संज्ञा से जानी जाती हैं। तिथि के पूर्वार्द्ध में जो भद्रा होती है उसे दिवा भद्रा कहा गया है, जबकि

तिथि के उत्तरार्द्ध में भद्रा हो तो वह रात्रि भद्रा कही जाती है। दिवा भद्रा दिन में तथा रात्रि भद्रा रात्रि में हो तो क्रमशः कही जाएगी और दिवा भद्रा दिन में तथा रात्रि भद्रा दिन में होने पर विपरीत क्रम से होती है। पक्ष के आधार पर भी 'भद्रा का विशेष नामकरण किया गया है, कृष्ण पक्ष की भद्रा वृश्चिकी संज्ञा एवं शुक्ल पक्ष की तिथियों वाली भद्रा सर्पिणी से जानी जाती है। वृश्चिकी भद्रा की पुच्छ और सर्पिणी भद्रा के मुख में शुभ कार्य नहीं करने चाहिए।

भद्रा करण का अंग विभाग-

भद्रा की अन्तिम 3 घटियों में आवश्यक कार्य हो तो शुभ कार्य कर सकते हैं।

घटी	5	1	11	4	6	3
अंग	मुख	कण्ठ	हृदय	नाभि	कटि	पुच्छ
फल	कार्यनाश	मृत्यु	द्रव्यनाश	द्वन्द्व	बुद्धिनाश	कार्यसिद्धि

भद्रा काल को उसके अंगों मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, कटि प्रदेश तथा पुच्छ में निवास करती है।

शुभाशुभ – बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज आदि चर करण मांगलिक कार्यों के लिए प्रशस्त हैं।भद्रा पुच्छ की घड़ियाँ शुभ तथा शुभ कार्यों के लिए श्रेष्ठ होती हैं। अतः युद्धादि क्रूर कार्यों को इसके काल में कर सकते हैं।स्थिर चार करणों में पितृ सम्बन्धित कार्य शुभ होते हैं।

पक्ष ज्ञान - शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष। प्रत्येक मास में प्रायः तीस दिन होते हैं। तीस दिनों को चंद्रमा की कलाओं के घटने और बढ़ने के आधार पर चन्द्रमा के चक्र के दो भाग होते हैं। दो भाग यानी शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में विभाजित किया गया है। एक पक्ष में पन्द्रह दिन होते हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ अमावस्या के उपरांत 12 डिग्री हर दिन बढ़ने लगती हैं। इसलिए यह पक्ष रात में रोशनी से जगमगाता दिखाई पड़ता है। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा पूर्णिमा के उपरांत प्रतिदिन क्रमशः 12 डिग्री अमावस्या तक घटता रहता है। अतः इस पक्ष में रात में चाँदनी नहीं होती है। ऋग्वेद के 10/85/19 वें मन्त्र में (नवो नवो भवति जायमानो....। लगध मुनि का "वेदांग ज्योतिष" और इस ग्रन्थ के षष्ठ श्लोक (माघ शुक्ल प्रपन्नस्य....

मास – दो पक्षों से मिलकर एक मास का निर्माण होता है। मास की गणना सूर्य और चन्द्र के आधार पर की जाती है। सूर्य के आधार पर गणना करने पर उसे सौर मास और चन्द्रमा से गणना करने पर

चान्द्रमास की संज्ञा दी जाती है। चान्द्रमास की गणना शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से और सौर मास की गणना मेष संक्रान्ति से चैत्रादि 12 मास प्रारंभ होते हैं।

नक्षत्रों के अनुसार चन्द्रमास -

हमारे भारतीय बारह मासों के नाम गगन मण्डल के नक्षत्रों के नामों पर रखे गये हैं। जिस मास में जो नक्षत्र आकाश में प्रायः रात्रि के आरम्भ से अन्त तक दिखाई देता है या जिस मास की पूर्णिमा को चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है, उसी के नाम पर उस मास का नाम रखा गया है। यथा-चैत्र -चित्रा, स्वाति। वैशाख- विशाखा, अनुराधा। ज्येष्ठ- ज्येष्ठा, मूल। आषाढ़- पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़। श्रावण- श्रवण, धनिष्ठा। शतभिषा, भाद्रपद- पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्रपद। आश्विन- रेवती, अश्विनी, भरणी। कार्तिक- कृतिका, रोहिणी। मार्गशीर्ष- मृगशिरा, आर्द्रा। पौष- पुनवर्सु, पुष्य। माघ-अश्लेषा, मघा। फाल्गुन-पूर्व फाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्त।

सौरमास- स्पष्ट सूर्य की एक दिन सम्बन्धी गति तुल्य काल को सौर दिन कहते हैं। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन ये बारह राशियों को ही बारह सौरमास माना जाता है। जिस दिन सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है उसी दिन संक्रान्ति होती है और इस राशि प्रवेश से ही सौरमास का दूसरा मास प्रारंभ माना जाता है सूर्य के प्रवेशानुसार मेषादि 12 सौरमास हैं। सूर्य की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रांति का समय सौरमास कहलाता है। अर्थात् सूर्य जितने समय तक एक राशि में रहता है, उसे सौर मास कहा जाता है। एक सौरमास में 30 दिन एवं 10 घण्टे होते हैं। इन्हीं बारह सौरमासों का एक सौर वर्ष होता है और सौरवर्ष में 365 दिन होते हैं। जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में वर्णन है यथा-

इसे भी समझे- दिन-रात्रि मान, षडशीतिमुख संक्रान्तियों का मान, अयन, विषुव तथा संक्रान्तियों का पुण्यकाल, यज्ञ, उपनयनादि षोडश संस्कार, ऋण का आदान-प्रदान सौरमास द्वारा ही किए जाते हैं।

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते।

मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते।।(म. अ.13)

इन 12 संक्रान्तियों के अतिरिक्त 2 विषुव संक्रान्ति, 2 अयन संक्रान्ति और 4 विष्णुपदी संक्रान्तियाँ भी होती हैं। विषुव संक्रान्ति (मेष, तुला), अयन संक्रान्ति (कर्क, मकर), षडशीतिमुख संक्रान्ति (मिथुन 18 अंश, कन्या 14 अंश, धनु 6 अंश तथा मीन 22 अंश) तथा विष्णुपदी संक्रान्ति (वृष, सिंह, वृश्चिक,

कुम्भ) का तथा सूर्य के मकर में संक्रमण काल से मिथुन राशि तक सूर्य उत्तरायण होते हैं एवं कर्क संक्रान्ति से धनु राशि तक सूर्य दक्षिणायन होते हैं। ये समस्त कालमान सौरमान पर ही आधारित है।

मेषादि देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम्।

असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः॥ (भू.अ.45)

मेषादि छः राशियों में स्थित रहने पर सूर्य का दर्शन देव भाग में और तुलादि छः राशियों में स्थित रहने पर सूर्य का दर्शन असुरों के भाग में होता है। मेषादि से कन्यान्त पर्यन्त छः राशियों में भ्रमण करता हुआ सूर्य विषवुत (नाडी) वृत्त से उत्तर में ही रहता है अतः लगभग 6 मास पर्यन्त सूर्य का दर्शन उत्तर गोल में होता है । इसी प्रकार तुलादि से मीनान्त पर्यन्त 6 शशियों में सूर्य नाड़ी वृत्त से दक्षिण में रहता है अतः 6 मास पर्यन्त सूर्य का दर्शन दक्षिण गोल में ही होता है। सूर्य की गति के अनुसार अहोरात्रादि

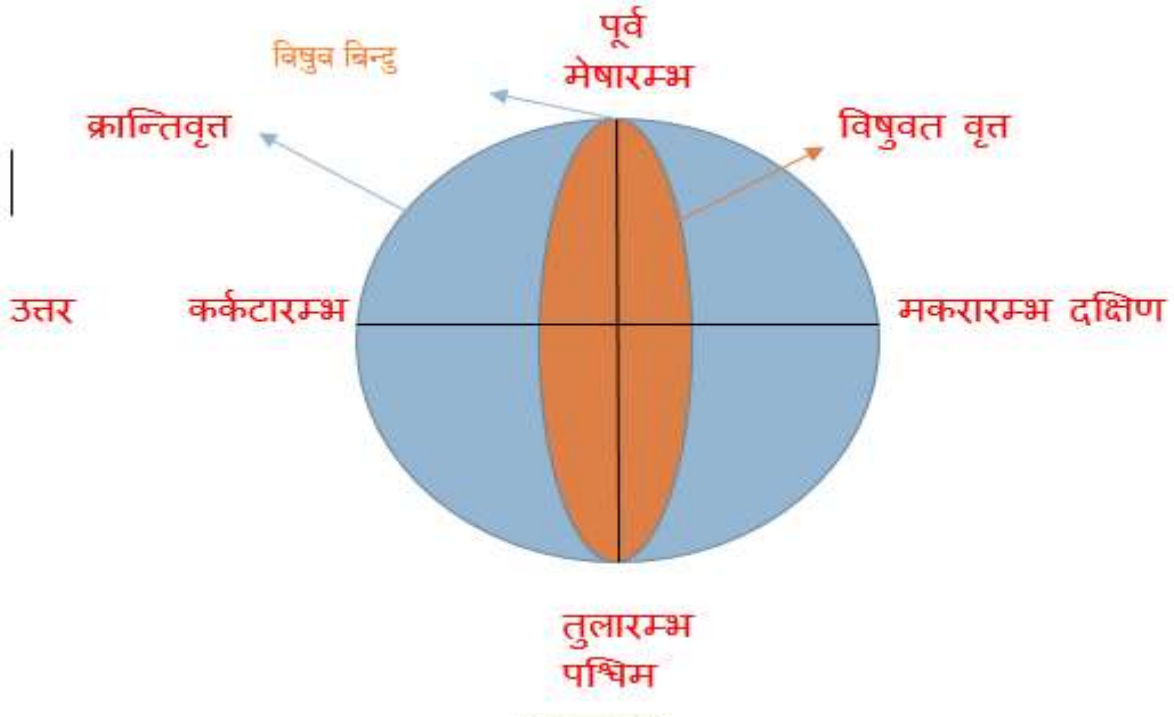

सौरमान होते हैं । सूर्य का एक चक्र भ्रमण एक सौर वर्ष होता है ।

चान्द्रमास- अमात्तादु मातं तु चान्द्रमासः। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ अमावस्या के पश्चात् शुक्ल पक्ष प्रतिपदा को चन्द्र नक्षत्र विशेष में एक कला हर दिन बढ़ते हुए पूर्ण चन्द्र रोशनी से जगमगाता दिखाई पड़ता है। पुनः कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा पूर्णिमा के उपरांत प्रतिदिन क्रमशः एक कला अमावस्या तक घटता रहता और दृष्टिगोचर नहीं होता है। पञ्चाङ्ग में मासों की गणना चान्द्रमास से 12 चन्द्र मासों का एक वर्ष सौर वर्ष से लगभग दश दिन छोटा होता है। इस प्रकार 3 वर्षों में यह अन्तर एक चन्द्रमास के बराबर

हो जाता है। अतः प्रति 3 वर्ष में एक चान्द्र मास अधिक हो जाता है। और उस बढ़े हुए मास को तेरहवां मास, अधिक मास, मलमास, पुरुषोत्तम मास आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार जिस मास में सूर्य संक्रान्ति नहीं होती है। उसे मलमास या फिर अधिक मास कहा जाता है। तथा चन्द्र मास में दो संक्रांतियाँ पड़ जाएँ तो वह क्षय कहलाता है। और जिस वर्ष क्षयमास आता है, उस वर्ष दो अधिक मास आते हैं। क्षय मास के 3 महीने पहले एक अधिक मास और 3 माह बाद दूसरा अधिक मास आता है। 19 वर्षों के अंतराल में क्षय मास आने की संभावना होती है। चान्द्र- यह 354 दिनों का होता है। अधिकतर मास इसी संवत्सर द्वारा जाने जाते हैं। यदि मास वृद्धि हो तो इसमें तेरह मास अन्यथा सामान्यतया बारह मास होते हैं। धर्म-कर्म, तीज-त्योहार और लोक-व्यवहार में इस मास की ही मान्यता अधिक है।

यज्ञ, आयु, स्त्रीगर्भ विचार, प्रायश्चित कर्म और सम्पत्ति विभाजन आदि सावन मास के अनुसार करने करने चाहिए।

सावन मास- "**उदयादुदयं भानोः भूमिसावनवासरः**।(मा. अ.18) आर्ष वचन" अर्थात् सावन मान सूर्योदय पर आधारित होता है। दो सूर्योदयों के मध्य का काल सावन दिन होता है।

भारतीयकालः	**पाश्चात्यकालः**
1प्राणः = 10 विपलानि =	4 सेकेण्ड
6 प्राणाः = 1 विनाडी = 1 पलम् =	24 सेकेण्ड = $\frac{5}{2}$ मिनट
60 विनाडिकाः = 1 नाडी = 1 दण्डः =	24 मिनट
60 नाडिका = एकं नाक्षत्रदिनम् = 60 दण्डाः =	24 घण्टाः
$\frac{5}{2}$ नाड्यः = $\frac{5}{2}$ दण्डाः =	1 घण्टा = 60 मिनट
30 नाक्षत्राहोरात्र = 1मासः =	1 मास
12 मासाः = 1वर्षम् =	1 वर्ष

इस प्रकार एक अहोरात्र में 24 घण्टे (60 घटी) मानकर 30 दिनों का एक सावन मास होता है तथा 12 सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है। यह सावन वर्ष 360 दिनों का होती है। यथा- आर्ष वचन-"**तत् त्रिंशता भवेन्मास: सावनोऽकोदियैस्तथा**" **(सू. सि.म.अ.12)**

नाक्षत्र मास में नक्षत्र शान्ति, जलपूजन आदि कार्य करने चाहिए।

नाक्षत्रमास- नक्षत्रमण्डल के दैनिक भ्रमण का कालमान एक नाक्षत्र दिन होता है। वसन्त सम्पात बिन्दु जिस क्षण याम्योत्तर वृत्त पर आता है, उस क्षण से वह बिन्दु पुनः याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण तक के

समय को नाक्षत्र दिन कहते हैं अर्थात् चन्द्रमा अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त के नक्षत्र में विचरण करता है वह काल नक्षत्रमास कहलाता है। (एक नक्षत्र का भोग एक दिन) यह लगभग 27 दिनों का होता है इसीलिए 27 दिनों का एक नाक्षत्रमास कहलाता है। सूर्यसिद्धान्त में आर्ष वचन- **"नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ।"**

क्षय- अधिमास- सौरवर्ष का मान 365 दिन, 15 घटी, 30 पल, व 31 विपल होता हैं और चान्दवर्ष का मान 354 दिन, 22 घटी, 1 पल, एवं 23 विपल होता है। अतः चन्द्रवर्ष सौर वर्ष से 10 दिन, 53 घटी, 20 पल, 7 व विपल कम होता है। अतः इस अन्तर की पूर्ति के लिए तथा चन्द्र वर्ष व सौर वर्ष में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रति 3 वर्ष में एक अधिक चान्द्रमास का तथा एक बार 141वर्षो के बाद और दूसरी बार 19 वर्षों के बाद क्षयमास की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार जिस मास में चन्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है, वह अधिमास कहलाता है तथा जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्तियाँ होती हैं, वह क्षय मास कहलाता है। क्षयमास व अधिकमास को मलमास और पुरुषोत्तम मास कहते है। यथा-"**असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः**"।

अधिकमास में यज्ञोपवीत, विवाह, वधुप्रवेश, ग्रहारम्भ, गृहप्रवेश, मुंडन, कूप निर्माण, प्रतिष्ठा आदि मांगलिक वर्जित हैं लेकिन सन्ध्या, मंत्र, यज्ञ- हवन, श्रीमद् देवीभागवत, श्री भागवत पुराण, गीता पारायण, नृसिंह भगवान की कथा आदि के करने एवं श्रवण को बहुत ही प्रशस्त माना जाता है।

संवत्सर विचार-

बारह महीने के कालविशेष को ही संवत्सर कहते हैं। भारतीय वर्ष गणना प्रणालियों में प्रत्येक वर्ष को संवत् कहा जाता है। हिन्दू , बौद्ध , और जैन परम्पराओं में कई संवत् प्रचलित हैं जिसमे विक्रमी संवत एवं शक संवत् प्रसिद्ध हैं। ब्राह्म, दैव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, और ब्रार्हस्पत्यादि काल हैं परन्तु **बार्हस्पत्य एवं चान्द्र मान से संवत्सर की गणना की जाती** है। प्रभवादि संवत्सरों का फल उनके नामानुगण होता है। शालिवाहन शक और विक्रम संवत् में 135 का अन्तर होता है तथा वर्तमान शक् संवत् में 135 जोड़ने पर विक्रम संवत्सर प्राप्त होता है।

यथा- 1945+135=2080 विक्रम संवत्सर।

यथा- संवत् 2023+9= 2032 प्राप्त संख्या को 60 से विभाजित करने पर 33 लब्धि तथा शेष 52। इस प्रकार 52 संवत्सर समाप्त हो गए और शुभकृत संवत्सर वर्तमान में है।

वर्तमान संवत् में 9 जोड़कर लब्ध संख्या को 60 से विभाजित करने पर गत संवत्सर प्राप्त होता है। विश्व में प्रचलित ईस्वी संवत् का ये 2023 वर्ष है। पंचांगों में संवत् प्रचलित हैं, तथा भारत के बहुत से क्षेत्रों में विक्रम संवत् प्रचलित है। विक्रम संवत् का आरम्भ मार्च एव अप्रैल से होता है। यथा- मार्च व अप्रैल 2023 से विक्रमी संवत् 2080 है।

संवत् या तो कार्तिक कृष्ण पक्ष से आरम्भ होते हैं या चैत्र कृष्ण पक्ष से तथा कार्तिक से आरम्भ होने वाले संवत् को कर्तक संवत् कहते हैं। संवत् में अमावस्या को अंत होने वाले मास (अमावस्यान्त मास) या पूर्णिमा को अन्त होने वाले मास (पूर्णिमान्त) मास कहा जाता है। किसी संवत् में पूर्णिमान्त मास का और किसी में अमावस्यान्त मास का प्रयोग होता है । भारत के अलग अलग स्थानों पर एक ही नाम की संवत् परम्परा में पूर्णिमांत या अमावस्यांत मास का प्रयोग हो सकता है। विक्रम संवत् का आरम्भ चैत्र मास के कृष्ण पक्ष से होता है। कार्तिक कृष्ण पक्ष दिवाली से आरम्भ होता है , इस दिन से वर्ष का आरंभ होने वाले संवत् को विक्रम संवत् (कर्तक) कहा जाता है। संवत् के अनुसार एक वर्ष की अवधि को भी संवत् कहा जा सकता है।

युगों के अधिपति-

12 युग	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
स्वामी	विष्णु	बृहस्पति	इन्द्र	अग्नि	विश्वकर्मा	अहिर्बुध्न्य	पितर	विश्वेदेवा	चन्द्र	इन्द्राग्नि	अश्वनी	भग

ऋतुज्ञान चक्र-

मेषादि दो-दो राशियों का भोगकाल ऋतु कहलाता है। इस प्रकार कालगणना में एक वर्ष को छः ऋतुओं में विभाजित किया गया है। जैसा कि सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है - **"द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः"** सौर गणना के अनुसार दो संक्रान्तियों की और दो चन्द्र मास की भी एक ऋतु होती है।

यथा- **सूर्य एवं चान्द्र मास के अनुसार वसंतादि ऋतु चक्र-**

ऋतुएँ	वसन्त	ग्रीष्म	वर्षा	शरद	हेमंत	शिशिर

सौरमास	मीन,मेष	वृषभ, मिथुन	कर्क, सिंह	कन्या, तुला	वृश्चिक, धनु	मकर, कुंभ
चान्द्रमास	चैत्र	ज्येष्ठ	श्रावण	आश्विन	मार्गशीर्ष	माघ
मास	वैशाख	आषाढ़	भाद्रपद	कार्तिक	पौष	फाल्गुन

अयन ज्ञान – उत्तरायण और दक्षिणायन।

अयन का शाब्दिक अर्थ चलना। अर्थात् सूर्य कर्कादि छः राशियों में दक्षिण दिशा की ओर गमन दक्षिणायन तथा मकर आदि छः राशियों में उत्तर दिशा की ओर गमन उतरायण काल कहलाता है। क्रान्तिवृत्त का उत्तर एव दक्षिण गोल विभाजन ही उत्तरायण और दक्षिणायन कहलाता है। सौर-वर्ष के दो भाग हैं- उत्तरायण छः मास का और दक्षिणायन भी छः मास का। इस प्रकार दो अयन उत्तरायण और दक्षिणायन होते हैं। उत्तरायण में देवताओं का दिन एवं दक्षिणायन में देवताओं की रात्रि होती है। श्रविष्ठादि (धनिष्ठा के आरम्भ) में सूर्य व चन्द्रमा उत्तर की ओर गमन (उत्तरायण) करते हैं तथा सार्पार्ध (आश्लेषा के आधे) में दक्षिण की ओर प्रवृत्ति (दक्षिणायन) होते हैं। सर्वदा सूर्य माघ और श्रावण मासों में क्रमशः उत्तर एवं दक्षिण की ओर भ्रमण करता है।

उत्तरायण तीर्थ यात्रा, प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, ग्रहप्रवेश, कूप निर्माण, नूतन गृहप्रवेश और विवाह संस्कारादि कार्यों के लिए शुभ समय है।

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।

स्यात् तदादियुगं माधस्तपः शुक्लोऽयनं ह्ययुदक्।। (याजुष. ज्यो. 6)

उत्तरायण - मकर से मिथुन पर्यन्त सूर्य उत्तरायण होता है।(माघ से आषाढ़) यह समय देवताओं का दिन माना जाता है। शिशिर वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ उत्तरायण को सुशोभित करती हैं।

दक्षिणायन- सूर्य कर्क से धनु राशि पर्यन्त दक्षिणायन में रहता है।(श्रावण से पौष) सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करता है तब सूर्य दक्षिणायन होता है। वर्षा, शरद और हेमन्त तीन ऋतुएँ इस समय अपनी सुषमा विखेरती हैं। इस अयन के अधिपति पितृ हैं। दक्षिणायन में उग्र देवताओं की प्रतिष्ठा, व्रत और उपवास का समय होता है। इस समय व्रत और उपासना करने से रोग और कष्ट समाप्त होते हैं।

इस समय विवाह और उपनयन आदि संस्कार वर्जित है, परन्तु **यदि सूर्य वृश्चिक राशि में हो तो मार्गशीर्ष मास में ये सब किया जा सकता है। उत्तरायण में मीन राशि में विवाह वर्जित है।**

महीनों के नाम पूर्णिमा के दिन चंद्रमा जिस नक्षत्र में रहता है:

- चैत्र : चित्रा, स्वाति।
- वैशाख : विशाखा, अनुराधा।
- ज्येष्ठ : ज्येष्ठा, मूल।
- आषाढ़ : पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, शतभिषा।
- श्रावण : श्रवण, धनिष्ठा।
- भाद्रपद : पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र।
- आश्विन : अश्विन, रेवती, भरणी।
- कार्तिक : कृतिका, रोहणी।
- मार्गशीर्ष : मृगशिरा, उत्तरा।
- पौष : पुनर्वसु, पुष्य।
- माघ : मघा, अश्लेषा।
- फाल्गुन : पूर्वाफाल्गुन, उत्तराफाल्गुन, हस्त।

अधिवर्ष में, चैत्र में 31 दिन होते हैं और इसकी शुरुआत 21 मार्च को होती है। वर्ष की पहली छमाही के सभी महीने 31 दिन के होते हैं, जिसका कारण इस समय कान्तिवृत्त में सूरज की धीमी गति है। महीनों के नाम पुराने, हिन्दू चन्द्र-सौर पंचांग से लिए गये हैं इसलिए वर्तनी भिन्न रूपों में मौजूद है और कौन सी तिथि किस कैलेंडर से सम्बन्धित है इसके सन्दर्भ में भ्रम बना रहता है।

शक युग, का पहला वर्ष सामान्य युग के 78 वें वर्ष से प्रारम्भ होता है, अधिवर्ष निर्धारित करने के शक वर्ष में 78 जोड़ दें- यदि ग्रेगोरियन कैलेण्डर में परिणाम एक अधिवर्ष है, तो शक वर्ष भी एक अधिवर्ष ही होगा।

वर्ष को संवत्सर कहा जाता है। जैसे प्रत्येक माह के नाम होते हैं उसी तरह प्रत्येक वर्ष के नाम अलग अलग होते हैं। जैसे बारह माह होते हैं उसी तरह 60 संवत्सर होते हैं। संवत्सर अर्थात बारह महीने के कालविशेष को ही संवत्सर कहते हैं। भारतीय संवत्सर पाँच प्रकार के होते हैं। इनमें से मुख्यतः तीन हैं- सावन, चान्द्र तथा सौर।

60 संवत्सरों के नाम तथा क्रम इस प्रकार हैं-

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।

अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ।।

ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः।

चित्रभानुः सुभानुश्चतारणः पार्थिवो व्ययः ।।

सर्वजित्सर्वधारी च विरोधीविकृतिः खरः।

नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ।।

हेमलम्बी विलम्बी च विकारी शार्वरी प्लवः।

शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ।।

प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणो विरोधकृत्।

परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ।।

पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती ।

दुन्दुभी रुधिरोगारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ।।

(1) प्रभव, (2) विभव, (3) शुक्ल, (4) प्रमोद, (5) प्रजापति, (6) अंगिरा, (7) श्रीमुख, (8) भाव, (9) युवा, (10) धाता, (11) ईश्वर, (12) बहुधान्य, (13) प्रमाथी, (14) विक्रम, (15) विषु, (16) चित्रभानु, (17) स्वभानु, (18) तारण, (19) पार्थिव, (20) व्यय, (21) सर्वजित, (22) सर्वधारी, (23) विरोधी, (24) विकृति, (25) खर, (26) नन्दन, (27) विजय, (28) जय, (29) मन्मथ, (30) दुर्मुख, (31) हेमलम्ब, (32) विलम्ब, (33) विकारी, (34) शर्वरी, (35) प्लव, (36) शुभकृत, (37) शोभन, (38) क्रोधी, (39) विश्वावसु, (40) पराभव, (41) प्लवंग, (42) कीलक, (43) सौम्य, (44) साधारण, (45) विरोधकृत, (46) परिधावी, (47) प्रमादी, (48) आनन्द, (49) राक्षस, (50) नल, (51) पिंगल, (52) काल, (53) सिद्धार्थ, (54) रौद्रि, (55) दुर्मति, (56) दुंदुभि, (57) रुधिरोद्गारी, (58) रक्ताक्ष, (59) क्रोधन (60) क्षय।

गण्डान्त विचार-

गण्डान्त नाम सन्धिविशेष। किसकी सन्धि तिथि-नक्षत्र-लग्नादि का सन्धिकाल। ये सन्धि तीन प्रकार की होती हैं। इन गण्डान्तों की शान्ति भी करनी चाहिए यथा अथर्ववेद-

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात्परि पाह्येनम्।

स ग्राह्याः पाशान्वि चृत प्रजानन्तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे॥ (अथर्ववेद.6.112.1)

तिथिगण्डान्त- तिथिगण्डान्त नाम तिथि का सन्धिकाल। इस सन्दर्भ में पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, पञ्चदशी) नन्दा (प्रतिपत्, षष्ठी, एकादशी) इनका विचार करते हैं। पूर्णातिथियों की अन्तिम एक घटी, नन्दा तिथियों की आद्य एक घटी दोनों मिलकर दो घटी गण्डान्त काल होता है।

तिथि	अघ.		आ.घ.	तिथि	कुल घटी
पञ्चमी	1	+	1	षष्ठी	2
दशमी	1	+	1	एकादशी	2
पञ्चदशी	1	+	1	प्रतिपत्	2

नन्दा तिथेश्च नामादौ पूर्णायाश्च तथान्तिके।

घटिकैका शुभे त्याज्या तिथिगण्डा घटि द्वयम्।।

नक्षत्र गण्डान्त- ज्येष्ठा-रेवती-आश्लेषा नक्षत्रों की अन्त्य दो घटी एवं मूला-अश्वनी-मघा नक्षत्रों की आद्य (प्रथम) दो घटी गण्डान्त संज्ञक होती हैं।

नक्षत्र	अ. घ.		आघ.	नक्षत्रम्	कुल घटी
रेवती	2	+	2	अश्विनी	4
आश्लेशा	2	+	2	मघा	4
ज्येष्ठा	2	+	2	मूला	4

ज्येष्ठा श्लेषा रेवतीनां नक्षत्रान्ते घटीद्वयम्।

आदौ मूलमघाश्विन्या भगण्डे घटिका द्वयम् ।।

लग्नगण्डान्त- कर्क-वृश्चिक-मीन-की अन्त्य अर्ध घटी और सिंह-धनु-मेष राशि के आद्य की अर्ध घटी गण्डान्त संज्ञक होती हैं।

लग्न	अ.घ.		आघ.	लग्न	स.घ.
कर्क	½	+	½	सिंह	1

वृश्चिक	½	+	½	धनु	1
मीन	½	+	½	मेष	1

यथा- मीन वृश्चिक कर्कान्ते घटिकार्द्ध परित्यजेत्।

आदौ मेषस्य चापस्य सिंहस्य घटिकार्द्धकम्।।

इस इकाई में पञ्चाङ्ग के घटकों को उदाहरण सहित विस्तृत रूप से समझाया गया हैं। जिससे छात्र सरल रूप से समझ सकें और पञ्चाङ्ग का उपयोग कर सकें।

भचक्र परिचय-भचक्र (राशि चक्र) का अर्थ राशि अथवा नक्षत्र होता है। इसी कारण राशियों के समूह को "भचक्र या राशिचक्र कहा जाता है। यह भचक एक कल्पित वृत्त है। इसी वृत्त के बीच से सूर्य का संक्रमण पथ गुजरता है। इसी कारण इसे क्रान्तिवृत्त कहा जाता है। इस वृत्त का विस्तार 360 अंश है। इसके 12 समान भाग करने पर प्रत्येक का मान 30 अंश होता है। भचक्र के इसी 30 अंश वाले एक भाग को राशि कहते हैं। 12 राशियाँ खचक्र की परिधि पर स्थित हैं। यह खचक्र अपनी धुरी पर दिन में एक बार पूर्व से पश्चिम की तरफ घूमता है। इसी भ्रमण के कारण राशियों का उदय व अस्त होता है। राशि भचक्र के 30 अंशात्मक एक भाग को राशि कहते हैं, इन राशियों की संख्या 12 हैं यथा-मेष /Aries, वृष/ Taurus, मिथुन /Gemini, कर्क/ Cancer, सिंह /Leo, कन्या/ Virgo, तुला/ Libra,वृश्चिक/ Scorpio, धनु/ Sagittarius, मकर/ Caprice , कुम्भ/ Aquarius, मीन/ Pisces.

मेषवृषमिथुनकर्कटसिंहाः कन्या तुलाऽथवृश्चाककः।

धन्वी मकरः कुम्भो मीनास्विति राशिनामानि ।।

<table>
<tr><td>12 मीन</td><td>1 मेष</td><td>2 वृष</td><td>3 मिथुन</td></tr>
<tr><td>11कुम्भ</td><td colspan="2" rowspan="2"></td><td>4 कर्क</td></tr>
<tr><td>10 मकर</td><td>5 सिंह</td></tr>
<tr><td>9 धनु</td><td>8 वृश्चिक</td><td>7 तुला</td><td>6 कन्या</td></tr>
</table>

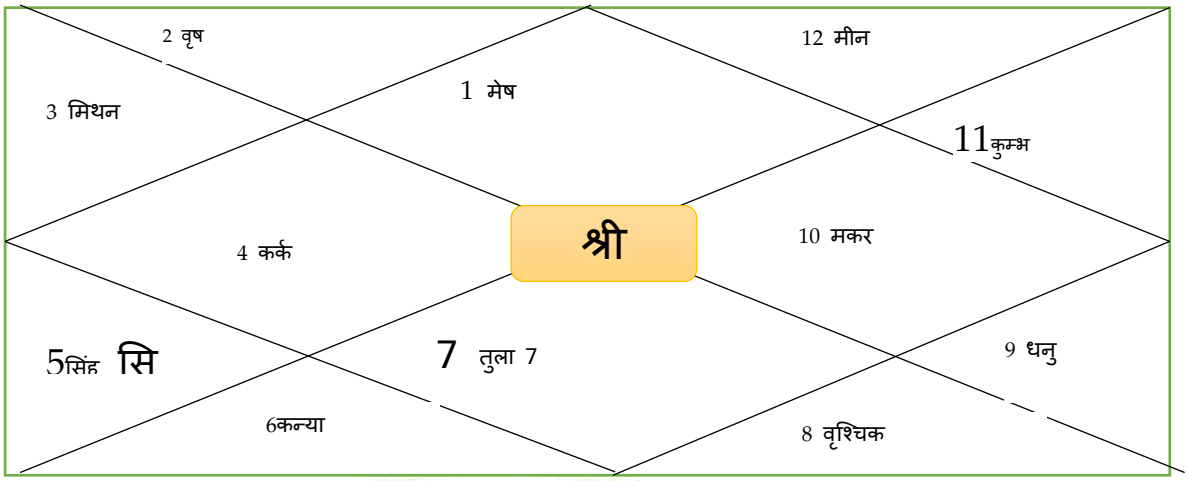

जैसा कि भचक्र में आपने राशियों का ज्ञान प्राप्त किया इसी प्रकार भचक्र में 27 नक्षत्रों की स्थिति होती है।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ (ऋ. 10.190.3)

सोम व सूर्य के नक्षत्रों में संचरण के गतागत विज्ञान को जो जानता है वह लोक में सन्तति, मन वाच्छित सफलता प्राप्त करते हुए, स्वर्गलोक में सुशोभित होता है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है-

सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेद विदश्नुते।

सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्।।याजुष ज्यो.43।।

लेकिन राशियों के अनुसार हम नक्षत्रों का अध्ययन करें तो मेष राशि के आरम्भ में अश्विनी तथा अन्तिम मीन राशि के अन्त में अन्तिम नक्षत्र रेवती स्थित है। प्रत्येक नक्षत्र का विस्तार 13 अंश व 20 कला होता है। इसके चार समान भाग होते हैं। इन्हें चरण या पाद कहते हैं। नौ चरणों अर्थात् सवा दो (2.1/2) नक्षत्रों से एक राशि बनती है। इन नक्षत्रों के प्रत्येक चरण के प्रतिनिधि के रूप में वर्णमाला के मात्रा सहित चार-चार अक्षर माने जाते हैं। जन्म के समय जिस नक्षत्र का जो चरण वर्तमान में होता है, उस चरण के अक्षर से शुरू होने वाला नाम शिशु का जन्म नाम माना जाता है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है-

नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि।

यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्।। याजुष ज्यो.35।।

नक्षत्रों के नाम व उनके चरणाक्षर-

क्र.सं.	नक्षत्र	चरण	क्र.सं.	नक्षत्र	चरण
1.	अश्विनी	चू, चे, चो, ल	16	विशाखा	ति तु ते तो
2.	भरणी	लि लु ले लो	17	अनुराधा	न नी नु ने
3.	कृत्तिका	अ ई उ ए	18	ज्येष्ठा	नो या यि यु
4.	रोहिणी	ओ व वी वु	19	मूल	ये यो भा भी
5.	मृगशिरा	वे वो का की	20	पूर्वाषाढ़ा	भु थ भ ढ
6.	आर्द्रा	कु घ ङ छ	21	उत्तराषाढ़ा	भे भो ज जि
7.	पुनर्वसु	के को ह ही	22	अभिजित	जु जे जो श
8.	पुष्य	हु हे हो ड	23	श्रवण	शि शु शे शो
9.	आश्लेषा	डी डू डे डो	24	धनिष्ठा	ग गि गु गे
10.	मघा	म मी मु मे	25	शतभिषा	गो स सि सु
11.	पूर्वफाल्गुनी	मो टा टि टू	26	पूर्वभाद्रपद	से सो द दि
12.	उत्तरफल्गुनी	टे टो पा पी	27	उत्तरभाद्रपद	दु ख झ ध
13.	हस्त	पु ष ण ठ	28	रेवती	दे दो च चि
14.	चित्रा	पे पो र री			
15.	स्वाति	रू रे रो त			

इस प्रकार हमने भचक्र का सामान्य परिचय प्राप्त किया।

प्रश्नावली

प्रश्न-1. पंचाग के कितने अङ्ग होते हैं? पाँच ।

प्रश्न-2. कितनी तिथियाँ होती हैं? तीस (30)।

प्रश्न-3. स्थिर करण कितने प्रकार के होते हैं ? **चार** (4)।

प्रश्न-4. ऋतुएँ कितने प्रकार की होती हैं? **छः प्रकार (6)**।

प्रश्न-5. तिथियों को संज्ञा दी गई है। **नन्दा-भद्रा - जया – रिक्ता- पूर्णा** ।

प्रश्न-6.गण्डान्त कितने प्रकार के होते हैं? **तीन (3)।तिथि- नक्षत्र- लग्न।**

प्रश्न-7. संवत्सर कितने होते हैं? 60 **संवत्सर**।

प्रश्न-8. तिथि, करण, विवाह, मुण्डन, जातकर्म व्रत-उपवास, यात्रा की क्रियाएँ तथा अन्य सभी कार्य, किस मान के अनुसार होते हैं? **चान्द्रमान से**।

प्रश्न-9. संक्रान्तियों का पुण्यकाल किस मान से ज्ञात किया जाता है? **सौरमान से** ।

प्रश्न-10. एक तिथि में कितने अंश होते हैं? 30 **अंश**।

निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए-

प्रश्न-1. तिथि का आधा .....होता है । **करण** ।

प्रश्न-2.सूर्य से चन्द्रमा के .....आगे जाने पर 1 तिथि होती है।12 **अंश**

प्रश्न-3. चैत्रादि..... होते हैं। 12 **मास** ।

प्रश्न-4. सूर्य कर्कादि छः राशियों में दक्षिण दिशा की ओर गमन .....तथा मकर आदि छः राशियों में उत्तर दिशा की ओर गमन .....काल कहलाता है। **दक्षिणायन - उतरायण**

बोध प्रश्न-

1. पंचाङ्ग का सामान्य परिचय दीजिए।
2. गण्डान्त की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।
3. उत्तरायण तथा दक्षिणायन में करने योग्य कार्यों की व्याख्या कीजिए।
4. चोरी गत (नष्ट द्रव्य) वस्तुओं का लाभालाभ विचार नक्षत्रों के आधार विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
5. पञ्चकों का विचार कैसे किया जाता है वर्णन कीजिए?
6. जन्म के समय नक्षत्र पादों का कैसे विचार किया जाता है?
7. तिथियों के अधिपतियों का तिथि सहित नाम लिखिए।

।।श्री।।

इकाई: 6 मुहूर्त्तज्ञान

प्रस्तावना- इस इकाई के द्वारा ज्योतिष के काल विभाजन के आधार पर मुहूर्त्त की प्रत्यक्ष विधि का अध्ययन करते हुए मुहूर्त्त के विषय में जानेंगे कि मुहूर्त क्या है? मुहूर्त्त का प्रयोजन क्या है? मुहूर्त्त का निर्णय कैसे करते हैं?

5.1 **मुहूर्त-** यज्ञ निर्वहन से लेकर समान्य कार्य के लिए मुहूर्त्त निश्चित होते हैं। दिनमान एवं रात्रिमान का पन्द्रह वां भाग एक मुहूर्त्त व क्षण होता है। अर्थात् मुहूर्त्त नाम कालविशेष वाचक है। यह प्रायः दो घटी (48 मिनट) का समय होता है। शुभ कार्य निर्वहण योग्य काल को ही मुहूर्त कहते हैं। अर्थात् तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करणादि का पञ्चाङ्ग के द्वारा आदेशित शुभकाल। इस प्रकार एक अहोरात्र में त्रिंशत(30) मुहूर्त्त होते हैं।जैसा कि मुहूर्तविधान में कहा गया है यथा-

अथातस्संप्रवक्ष्यामि मुहूर्तान्नित्यसंयुतान् ।
अहोरात्रे च ते त्रिंशद्दिवा पञ्चदशस्मृताः ।।
तावन्ति रात्रौ विज्ञेयोस्तेभ्यः पञ्चदशांशुजाः ।
अह्नि रात्रौ तदंशास्स्युस्तेषां नामानि वक्ष्यते ।।
रौद्रस्सार्पस्तथा मैत्रः पैत्रो वासव एव च ।
आप्यो विश्वस्तथा ब्रह्मा प्राज्ञोऽन्यं द्रोण उच्यते।।
ऐन्द्रोऽथ नैऋतिश्चैव वार्यर्यम्णस्तथैव च ।
भगश्चैवेति विज्ञेया क्षणा पञ्चदशादिव।।
आर्द्रा प्रोष्ठपदश्चैवाहिर्बुध्निः पौष्ण एव च ।
गन्धर्वो राक्षसाश्चैव प्राजाप्यैग्नेन्दवा स्मृता।।
अदितिर्गुरुदैवत्यं वैष्णवं च तथैव च ।
सावित्रत्वाष्ट्रवायव्याः क्षणरात्रौ विदुर्बुधाः।।

दिन एवं रात्रि के मुहूर्त्त-

गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यवस्वम्बुविश्वेऽभिजिदथ च विधाताऽपीन्द्र इन्द्रानलौ च।
निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाथो भगः स्युः क्रमश इह, मुहूर्त्ता वासरे बाणचन्द्राः ॥

एक दिन तथा एक रात्रि में 15 मुहूर्त्त होते हैं जैसा कि मुहूर्त्तचिन्तामणि में भी कहा गया है-

क्र.सं.	दिन के मुहूर्त्त व अधिप	क्र.सं.	रात्रि के मुहूर्त्त व अधिप
1.	गिरिश- आर्द्रा	1	शिव- आर्द्रा
2.	भुजग-आश्लेषा	2	अजपाद्- पूर्वाभाद्रपद
3.	मित्र- अनुराधा	3	उत्तरभाद्रपद्- अहिर्बुध्न्य
4.	पित्र्य- मघा	4	रेवती- पूषा
5.	वसु-धनिष्ठा	5	अश्विनी- अश्विनीकुमार
6.	अम्बु- पूर्वाषाढा	6	भरणी- यम
7.	विश्व- उत्तराषाढा	7	कृतिका- वह्नि
8.	अभिजित्- ब्रह्म	8	रोहिणी- विधाता
9.	विधाता-रोहिणी	9	मृगशिरा- चन्द्र
10.	इन्द्र- ज्येष्ठा	10	अदिति- पुनर्वसु
11.	इन्द्रानलौ- विशाखा	11	जीवक- पुष्य
12.	निर्ऋति- मूल	12	विष्णु- श्रवण
13.	उदकनाथ- शतभिषा	13	अर्क- हस्त
14.	अर्यमा- उत्तरफाल्गुनी	14	त्वाष्ट- चित्रा
15.	भग- पूर्वाफाल्गुनी	15	मरुत- स्वाती

रात्रि के मुहूर्त्त-

शिवोऽजपादादष्टौ स्युर्भेशा अदितिजीवको ।

विष्ण्वर्कत्वाष्ट्रमरुतो मुहूर्ता निशि कीर्तिताः ॥

मुहूर्तों के स्वामी- शिव,अजपाद्, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, अदिति, जीव, विष्णु, अर्क, त्वाष्ट्र एवं वायु इन 15 मुहूर्तों के स्वामी होते हैं। इनका प्रयोग यह है कि, जो कार्य जिस नक्षत्र में कहा है वह उसके स्वामी के मुहूर्त्त में कर लेना उचित है। जैसा कि **महर्षि नारद** ने कहा है कि- जिन नक्षत्रों में जो शुभ कार्य कर सकते हैं वह कार्य उनके देवता, तिथि एवं करणों में भी करना चाहिए।

यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम्।

करणमुहूर्तेष्वपि तत्सिद्धिकर देवता सदृशम्।।

जैसे- विवाह के लिए रोहिणी नक्षत्र का निर्देश है। इसके स्वामी ब्रह्मा है। यह रोहिणी नक्षत्र का देवता है। यह दिन का नौवां मुहूर्त्त है और इसके स्वामी ब्रह्मा है। अतः विवाह के लिए श्रेष्ठ है। इस प्रकार आचार्यों द्वारा नक्षत्र में निर्देशित शुभ कार्य तथा उसके स्वामी के आधार पर मुहूर्त का निर्णय करना चाहिए।

इस प्रकार दिन- रात्रि के 15-15 मुहूर्त्त होते हैं लेकिन इन मुहूर्त्तों में दिनमान और रात्रिमान को विभाजित करके वारों के अनुसार कुछ दुर्मुहूर्त्त भी होते हैं। जैसा कि मुहूर्त्तचिन्तामणि में कहा गया है-

रवावर्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे वह्निपित्ये बुधे चाभिजित्स्यात्।

गुरौ तोयरक्षो भृगौ ब्राह्मपित्र्ये शनावीशसार्पौ मुहूर्त निषिद्धाः।।

रविवार को अर्यमा, सोमवार को ब्रह्मा और राक्षश, मंगलवार को अग्नि एवं पितृ, बुधवार को अभिजित् , गुरुवार को तोय और राक्षस, शुक्रवार को ब्रह्म और पितृ एवं शनिवार को शिव सर्प मुहूर्त निषिद्ध होते हैं।

निषिद्ध मुहूर्त्त

वार	दिन के निषिद्ध मु.	रात्रि के निषिद्ध मु.	मुहूर्तों के नाम	नक्षत्र
रविवार	14	-	अर्यमा	उत्तराफाल्गुनी
सोमवार	9,12	8	ब्रह्म, राक्षस	रोहिणी. मूल
मंगलवार	4	7	वह्नि, पित्र्य	कृत्तिका, मघा
बुधवार	8	-	अभिजित्	अभिजित्
गुरुवार	6,12	-	जल. राक्षस	पू. षा. मूल
शुक्रवार	4,9	8	ब्रह्म, पित्र्य	रोहिणी, मघा
शनिवार	1, 2	1	ईश, सार्प	आर्द्रा, श्लेषा

मुहूर्त्त का प्रयोजन-

जब कोई भी व्यक्ति शुभ मुहूर्त या दुर्मुहूर्त्त में जो कुछ भी कार्य करता है, उसका फल न केवल इस जन्म में अपितु जन्मान्तर में भी भोगना पड़ता है। यह अंश आचार्य बृहस्पति विरचित मुहूर्त्तविधान ग्रन्थ में तथा वराहमिहिर की लघुजातक में वर्णित है -

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम् ।

व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

पुनः गर्भाधानादि संस्कार-प्रवास-कृषि आदि कार्य तथा अनेक व्यावहारिक कार्य योग्यकाल अर्थात् शुभकाल में करने से भाग्यहीन जातक भी भाग्यवान होकर शुभफल प्राप्त करता है। अतः इन से सम्बन्धित बहुत नियम हैं, उन नियमों का अनुसार निश्चित शुभ समय ही मुहूर्त्त है। मुहूर्त्तलोक व्यवहार के मध्य में निकटतमः सम्बन्ध है। प्रायः आज भी विवाहादि संस्कार विना मुहूर्त्त के सम्भव नहीं हैं। क्योंकि मानव सदैव सुखानुभूति ही चाहता है, दुःख का कभी अनुभव करना नहीं चाहता। अतः प्राचीन काल से ही मानव शुभ समय, लग्न, मुहूर्त्तादि में ही अपने धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि कार्यों का शुभारम्भ करता है ताकि भविष्य में उसमें कोई समस्या उत्पन्न न हो तथा ऐसी सभी समस्याओं का समाधान ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही संभव है। ज्योतिष शास्त्र को वेद का नेत्र कहा गया है। इसके बिना श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त प्रतिपादित कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं होती है। मधुर विचार और शिष्टाचार, धर्म, अर्थ और काम का आचरण यह सब स्त्री के लग्न पर निर्भर करता है। इसी कारण विवाह समय में मुहूर्त्त का विचार अवश्य किया जाता है क्योंकि पुत्र का स्वभाव, आचरण और धर्म ये सब विवाह समय की लग्न पर ही निर्भर करते हैं। जैसा कि मुहूर्तचिन्तामणि का वचन है-

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः।
तस्माद् विवाहसमयः परिचिन्त्यते हि
तन्निघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः ।।

5.3 भूमि पूजन मुहूर्त विचार- गृहारम्भ में सर्वप्रथम भूमि पूजन होता है। बाद में शिलान्यास किया जाता है हीर कुछ लोग भ्रान्तिवश भूमि पूजन एवं शिलान्यास को एक ही कार्य मान लेते हैं और दोनों कार्य एक साथ ही सम्पन्न करते एवं कराते हैं। भूमि पूजन में शिलान्यास से पूर्व नींव के लिए खुदाई का कार्य होता है। शिलान्यास में नींव में प्रथम शिला स्थापित करके भवन की नींव भरी जाती है।

भूमि पूजन हेतु मुहूर्त के लिए मास शुद्धि, पक्ष शुद्धि, पचाङ्ग शुद्धि एवं लग्न का विचार विशेष रूप से किया जाता है किन्तु इन सब के विचार करने के पूर्व भूमि की शयनावस्था का विचार अवश्य करना चाहिए। भूमि शयन में भूमि पूजन न करके जाग्रत भूमि में ही भूमि पूजन करना श्रेयस्कर होता है। यथा -

प्रद्योतनात्पंचागांकसूर्यनवेन्दुषड्विंशतिमितेषु भेषु।

शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापी खननं न शस्तम्॥'

अर्थात् सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक (जिस दिन भूमि-पूजन अभीष्ट हो) 5, 7, 9, 12, 19 एवं 26वाँ नक्षत्र हो तो, भूमि खनन अर्थात् नींव खोदने का कार्य नहीं करना चाहिए।

मतान्तर से सूर्य संक्रान्ति के दिन से 5, 7, 9, 11, 15, 20, 22, 23 एवं 28वें दिन भूमि शयन होता है। इसको ध्यान में रखकर ही भूमि पूजन के मुहूर्त्त निर्णय करना चाहिए । अन्य विचारणीय विषय निम्न प्रकार हैं -

1. गुरु-शुक्र तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर भूमि पूजन नहीं होता।
2. रविवार एवं मंगलवार भूमि खनन में वर्जित हैं।
3. रिक्ता (4, 7, 9, 14) एवं अमावस्या तिथि त्याज्य हैं।

शिलान्यास (प्रथम इष्टिका न्यास) सर्वदा अग्निकोण में ही करना चाहिए। खात (खनन) का प्रारम्भ तो किसी विदिशा (कोण) में हो सकता है, किन्तु शिलान्यास सदैव अग्निकोण में ही किए जाने का बहुसम्मत मत शास्त्रों में उपलब्ध होता है। यथा -

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैव प्रतिस्थाप्या बृ.बा.

शारंगधर मत -

प्रासादेषु हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा।
आग्नेय्यां प्रथमं स्थापयेत्तद्विधानतः॥

कश्यप ऋषि का मत -

सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः।।

अग्निकोण में शिलान्यास करके ताम्र कलश की स्थापना करनी चाहिए। ताम्रपाय (कलश) में तीर्थों की मिट्टी, ईट, स्वर्ण, पंचरत्न, सप्तधान्य, शैवाल (काई) रख कर अग्निकोण में खुदे हुए गड्ढे में स्थापित करना अभीष्ट होता है। वह भवन निर्माण के समय का खातपात्र होता है। यथा -

मृदिष्टिका स्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुतम्।
ताम्रपात्रस्थितं सर्व खातमध्ये नियोजयेत्।

वास्तुपुरुष की स्थिति का निर्णय करने के लिए गेहारम्भ की तिथि संख्या में 4 युक्त करके द्विगुणा करें उसमें गृहस्वामी के नामाक्षर संख्या को जोड़कर 3 का भाग दें। यदि 1 शेष बचे तो स्वर्ग में, 2 शेष बचे तो पाताल में तथा शून्य बचे तो मृत्युलोक में वास्तुपुरुष का निवास होता है। ऐसा पराशर ऋषि ने कहा है। स्वर्गलोक में वास्तुपुरुष का निवास हो तो लाभ, पाताल में वास्तुपुरुष हो तो निरन्तर लक्ष्मी प्राप्ति और मृत्युलोक में वास्तुपुरुष का वास मृत्युकारक होता है।

सवेदास्तिथयोद्विघ्ना नामाक्षर समन्वितः ।

त्रिभिश्चैव हरेद्भागं शेषः पुरुष उच्यते ।।

एके च वसतिः स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च।

शून्ये तु मृत्युलोके स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत्।।

स्वर्गेवासे भवेल्लाभः पातालेषु श्रियः सदा।

मृत्युलोके भवेन्मृत्युर्विचिन्त्य गृहमारभेत्।। वास्तुमुक्तावली 134-136

1.3 **भूमि पूजन मुहूर्त विचार-** गृहारम्भ में सर्वप्रथम भूमि पूजन होता है। बाद में शिलान्यास किया जाता है। भूमि पूजन में शिलान्यास से पूर्व नींव के लिए खुदाई का कार्य होता है। शिलान्यास में नींव में प्रथम शिला स्थापित करके भवन की नींव भरी जाती है।

भूमि पूजन हेतु मुहूर्त के लिए मास शुद्धि, पक्ष शुद्धि, पचाङ्ग शुद्धि एवं लग्न का विचार विशेष रूप से किया जाता है किन्तु इन सबका का विचार करने के पूर्व भूमि की शयनावस्था का विचार अवश्य करना चाहिए। भूमि शयन में भूमि पूजन न करके जाग्रत भूमि में ही भूमि पूजन करना श्रेयस्कर होता है। यथा -

प्रद्योतनात्पंचागांकसूर्यनवेन्दुषड्विंशतिमितेषु भेषु।

शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापी खननं न शस्तम्॥'

अर्थात् सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक (जिस दिन भूमि-पूजन अभीष्ट हो) 5, 7, 9, 12, 19 एवं 26वाँ नक्षत्र हो तो, भूमि खनन अर्थात् नींव खोदने का कार्य नहीं करना चाहिए।

मतान्तर से सूर्य संक्रान्ति के दिन से 5, 7, 9, 11, 15, 20, 22, 23 एवं 28वें दिन भूमि शयन होता है। इसको ध्यान में रखकर ही भूमि पूजन के मुहूर्त्त निर्णय करना चाहिए। अन्य विचारणीय विषय निम्न प्रकार हैं -

1. गुरु-शुक्र तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर भूमि पूजन नहीं होता।
2. रविवार एवं मंगलवार भूमि खनन में वर्जित हैं।

3. रिक्ता (4, 7, 9, 14) एवं अमावस्या तिथि त्याज्य हैं।

5.4 गृहप्रवेश मुहूर्त्त-

सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे ।

स्यादवेशनं दाःस्थमुदुध्रुवोडुभिर्जन्मर्क्षलग्नोपचोदये स्थिरे ।।

उत्तरायण समय में (मकर संक्रान्ति से मिथुन संक्रान्ति तक) ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख मासों में गृह मुख्य द्वार का दिशा वाले नक्षत्र (कृत्तिकादि 7,7 जो पूर्वादि दिशा में कहे गए हैं) उनमें तथा मुदुसंज्ञक(मृगशिरा, रेवती, चित्रा,अनुराधा) और ध्रुवसंज्ञक (उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी नक्षत्रों में, जन्म लग्न और जन्म राशि से उपचय (2,6,10,11) राशि व स्थिर लग्न में प्रवेश करना चाहिए।

जीर्णगृहप्रवेश मुहूर्त-

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सनू स्यात् ।

वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ।।

पुराने गृह अथवा अग्नि आदि से नष्ट होने पर नवनिर्मित घर में भी मार्गशीर्ष, कार्तिक और श्रावण मासों में भी तथा शतभिषा, पुष्य, स्वाती एवं धनिष्ठा में भी नवीन गृह प्रवेश करना शुभ होता है। अपूर्व-प्रवेश, यात्रा से लौटने पर सपूर्वप्रवेश और जीर्णगृहप्रवेश को द्वन्द्वप्रवेश कहते हैं।

अपूर्वः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने तु सपूर्वसंज्ञः ।

द्वन्वाभयः त्वग्निभयादिजातः त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥

वास्तु पूजन और गृहप्रवेश विधि-

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिश्च कारयेत् ।

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ।।

शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यार्काररिक्ताचरदर्शचैत्रे ।

अग्रेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेशम भकूटशुद्धम् ।।

मुदुसंज्ञक(मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) ध्रुवसंज्ञक (तोनों उत्तरा, रोहिणी) क्षिप्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका) चरसंज्ञक(स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और मूल नक्षत्रों में वास्तुपूजन और

भूतबलि करना चाहिए और लग्न से त्रिकोण (5,9) केन्द्र (1,4 , 7,10) तथा 11 व 3 भाव में शुभग्रह स्थित हों और पापग्रह 3, 6, 11 भावों में पापग्रह, लग्न से 4 ,8 भाव ग्रह रहित हों,

गृह स्वामी की जन्म राशि से लग्न 8 राशि लग्न को त्याग कर अन्य राशि लग्न हो, रविवार, मंगलवार, रिक्ता तिथि, (4, 8, 12) चर लग्न, अमावस्या और चैत्र मास को छोड़कर अन्य दिन, तिथि, लग्न, मासों में आगे पूर्ण कलश और ब्राह्मणों को लेकर भकूटादि से शुद्ध देखते हुए गृह में प्रवेश करना चाहिए।

गृह प्रवेश लग्न से वाम रवि विचार-

वामो रविर्मत्युसुतार्थलाभतोऽके पञ्चमे प्राग्वदनादिमन्दिरे ।

पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने ।।

गृहप्रवेश कालिक लग्न से 8,9,10,11,12 इन भावों में सूर्य हो तो पूर्व मुखवाले घर में करने में वाम रवि होता है तथा 5,6,7,8,9 भावों में सूर्य हो तो दक्षिण मुख के घर में प्रवेश करने मे वाम होता है। 2, 3,4, 5, 6 इन भावों में सूर्य हो तो पश्चिम मुख के घर मे प्रवेश करने से वाम रवि होता है, तथा 11,12 ,1,2, 3 इन भावों में रवि हो तो उत्तर द्वार वाले घर में प्रवेश करने वाले को वाम रवि होता है। पूर्व मुख के घर में पूर्णा तिथियों में, दक्षिण मुख के गृह में भद्रा तिथियों में, पश्चिम मुख के घर में, जया तिथियों और उत्तर मुख के गृह में प्रवेश शुभ होता है।

गृहप्रवेश में कुम्भ चक्र-

वक्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः

प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे ।

श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे

रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ।।

गृह प्रवेश समय में सूर्य जिस नक्षत्र में हो वह नक्षत्र के मुख में होता है। इससे 1 नक्षत्र कलश के मुख का होता है, उसमें प्रवेश करने से अग्निभय, उसके आगे के 4 नक्षत्र- पूर्व दिशा के होते हैं, उनमें प्रवेश करने से उद्वासता। तत्पश्चात् 4 नक्षत्र दक्षिण दिशा के होते हैं, उनमें प्रवेश करने से लाभ एवं सौख्य होता है। उससे आगे के 4 नक्षत्र पश्चिम दिशा के होते हैं, उनमें प्रवेश करने से सम्पत्ति लाभ होता है। उसके बाद के 4 नक्षत्र उत्तर दिशा के होते हैं, उनमें गृह प्रवेश करने से कलह होता है। तदनन्तर 4 नक्षत्र गर्भ के होते हैं, उनमें प्रवेश से विनाश। अनन्तर 3 नक्षत्र गुदा के होते हैं, उनमें प्रवेश करने से

स्थिरता और उसके आगे के 3 नक्षत्र कण्ठ के होते हैं, उनमें भी गृहप्रवेश करने से स्थिरता प्राप्त होती है।

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम् ।

शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान् राजाऽर्चयेद् भूमिहिरण्यवस्त्रैः ।।

इस प्रकार शुभ लग्न में मण्डप,पुष्प तथा मालाओं से सज्जित तथा वेदों के ध्वनि से युक्त अपने नवीन गृह में गृहपति को शिल्पज्ञ, ज्योतिषी, पुरोहित तथा पुरवासियों को यथाशक्ति भूमि, सुवर्ण एवं वस्त्रादि से सत्कार कर गृह में प्रवेश करना चाहिए।

गृहप्रवेशादि में त्याज्य शुभयोग-

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् ।

भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत् ।।

गृहप्रवेश में, यात्रा में तथा विवाह में यथाक्रम मंगलवार में अश्विनी नक्षत्र, शनिवार में रोहिणी नक्षत्र, गुरुवार में पुष्य नक्षत्र को त्याग देना चाहिए।

5.5 यज्ञोपवीत(उपनयन, व्रतबन्ध) मुहूर्त्त-

नवम संस्कार गर्भाधान समय से वा जन्म समय से पाँचवें अथवा आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, छठे या ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का, आठवें अथवा बारहवें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार श्रेष्ठ है। उपर्युक्त समय से द्विगुणित वर्ष तक उपनयन मध्यम अर्थात् गौण होता है।

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाब्जनेर्वाष्टिमे

वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे ।

वैश्यानां पुनरष्मेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे

कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ।।

व्रतबन्ध का मुहूर्त-

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा- रौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत् ।

द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ।।40।।

क्षिप्रसंज्ञक(हस्त, अश्वनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक(तीनों उत्तरा, रोहिणी), आश्लेषा, चरसंज्ञक, मूल, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा) तीनों पूर्वा(पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद) और आर्द्रा इन नक्षत्रों में,

रवि, बुध, गुरु, शुक्र, सोम आदि वारों में, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, एकादशी, द्वादशी, दशमी इन तिथियों में, शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तक दोपहर के पहले उपनयन करना शुभ है।

यज्ञोपवीत में निन्द्य वार-

शुक्र, गुरु, चन्द्र और लग्नेश छठें और आठवें स्थानों में, 12वें में चन्द्र और शुक्र हो तथा लग्न, आठवें में और पाँचवें स्थान में पाप ग्रह हो तो अशुभ है। जैसा कि मुहूर्त्तचिन्तामणी में कहा गया है-

कवीज्यचन्द्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः ।

व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः ।।

व्रतबन्ध में लग्नशुद्धि- व्रतबन्ध काल में लग्न से 6, 8, 12 भावों को त्यागकर इनसे भिन्न स्थान में शुभग्रह, तथा 3, 6, 11 इनमें पापग्रह हों और पूर्ण चन्द्रमा वृष कर्क राशि के लग्न में हो तो उपनयन में शुभ होता है।

व्रतबन्धेऽषडूरिःफवर्जिताः शोभनाः शुभाः ।

त्रिषडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ।।

ब्राह्मणादि वर्ण तथा वेदों के स्वामी-

ब्राह्मणों के गुरु और शुक्र, मंगल सूर्य क्षत्रियों के, चन्द्रमा वैश्यों के, बुध शूद्रों के, शनि अन्त्यजों (चाण्डालों) के स्वामी हैं। अर्थात् -ऋग्वेद के गुरु, यजुर्वेद के शुक्र, सामवेद के मङ्गल, अथर्ववेद के बुध स्वामी हैं।

वर्णेश और शाखेश का प्रयोजन-

उपर्युक्त वेदों के स्वामी का दिन हो, उसी का लग्न हो तथा वे बलवान् हों तो उपनयन अति शुभदायक होता है। शाखेश और सूर्य, चन्द्रमा एवं गुरु बली हों तो भी उपनयन शुभ होता है। गुरु शुक्र शत्रु के ग्रह की राशि में या किसी ग्रह से पराजित हों या फिर नीच में हों तो इस समय में उपनयन संस्कार करने से वेदशास्त्र की विद्याओं से अनभिज्ञ होता है।।44।।

शाखेशवारतनुवीर्यमतीव शस्तं शाखेशसूर्यशशिजीवबले व्रतं सत् ।

जीवे भृगौ रिपुगृहे विजिते च नीचे स्याद्वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ।।

यज्ञोपवीत में जन्ममासादि विचार-

ब्राह्मण के ज्येष्ठ बालक और क्षत्रिय, वैश्य के दूसरे गर्भ के बालक का जन्म दिन, जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्म लग्न और जन्म तिथि में भी उपनयन संस्कार करने पर वह बालक प्रसिद्ध विद्वान् होता है।

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।

आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ।।

गुरुशुद्धि विचार-

बालक और बालिका की जन्म राशि से 5, 9, 11, 2, 7 स्थानों में गुरु श्रेष्ठ होते हैं। 10, 6, 3, 1 आदि स्थानों में पूजा द्वारा शुभ होते हैं और 4, 8, 12 में स्थित गुरु अशुभ ही होते हैं, अर्थात् निन्दित होते है।

बटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः ।

श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः ।।

गुरु दोष का अपवाद विचार-

अपनी राशि का, अपने उच्च का, अपने मित्र के घर का, अपने नवांश का और वर्गोत्तम नवांश का गुरु यदि 4, 8, 1, 2 दुष्ट स्थान में हो तो भी शुभ है और नीच या शत्रु का हो तो शुभ भी अशुभ है।

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ।

रिष्फाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीयारिस्थः शुभोऽप्यसन् ।।

यज्ञोपवीत में निषिद्ध काल-

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके ।

प्राक्सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहे ।।

कृष्णपक्ष (कृष्णपक्ष के प्रथम तृतीयांश प्रतिपदा से पञ्चमी तक त्याग कर) अर्थात् षष्ठी से अमावस्या तक प्रदोशकाल (तृतीया, सप्तमी एवं द्वादशी का सन्धिकाल) अनध्याय(निषिद्ध है। शनिवार , रात्रि, मध्याह्न के बाद, तथा प्रातः और सायंकाल में, मेघ गर्जन पर, एवं गलग्रह (1, 4, 7, 8, 9, 13,14, 15,) तिथियाँ गलग्रह कही जाती हैं। इनमें उपनयन संस्कार शुभ नहीं होता है।

यज्ञोपवीत के समय ग्रहों का नवमांश फल-

यज्ञोपवीत के समय लग्न में सूर्य का नवांश क्रूर, चन्द्र का जड़, मंगल का पापी, बुध चतुर, बृहस्पति का हो तो यज्ञ- करना, कराना, अध्ययन, अध्यापन, दान देना एवं लेना आदि छः कर्मो का कर्ता, शुक्र का हो तो यज्ञ करने वाला और धनी तथा शनि का नवांश हो तो मूर्ख होता है।

क्रूरो जड़ो भवेत् पापः. पटुः षट्कर्मकृद्धटुः ।

यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात् ।।

चन्द्र नवमांश फल एवं अपवाद-

चन्द्रमा उपनयन काल में शुभग्रहों की राशियों के नवांश में हो तो वह बटुक विद्याभ्यास करने वाला तथा पाप राशि के नवांश में चन्द्रमा हो तो दरिद्र होता है। चन्द्रमा अपने नवांश में हो तो बहुत दुःखी और चन्द श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्र में हो तो बहुत धनी होता है।

विद्यानिरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः ।

चन्द्रे स्वलवे बहुदुःखयुतः कर्णादितिभे धनवान्स्वलवे ।।

केन्द्रस्थ सूर्यादि ग्रहों का फल-

यज्ञोपवीत संस्कार के समय यदि सूर्य ग्रह केन्द्र में हो तो राजा का सेवक, चन्द्र हो तो व्यापारी, मंगल होतो शस्त्र द्वारा जीविका चलानेवाला, बुध हो तो शिक्षक, गुरु हो तो पण्डित, धनवान् और शनि यवनादि का सेवक होता है।

राजसेवी वैश्यवृत्तिः शस्त्रवृत्तिश्च पाठकः ।

प्राराज्ञोऽर्थवान् म्लेच्छसेवी केन्द्रे सूर्यादिखेचरैः ।।

अन्य ग्रहों के फल-

शुक्रे जीवे तथा चन्द्रे सूर्यभौमाऽर्किसंयुते ।

निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणः सद्युते पटुः ।।

उपनयन समय में गुरु, शुक्र व चन्द्रमा (साथ-साथ या पृथक-पृथक) कोई भी ग्रह सूर्य के साथ युत हो तो गुणहीन, मङ्गल से युत हो तो निर्दयी, शनि से युत हो तो निर्लज्ज होता है और शुभ ग्रह से युत हो तो बटुक चतुर होता है।

चन्द्र नवांश का फल-

उपनयन काल में चन्द्रमा शुक्र के नवांश में हो व शुक्र त्रिकोण 9, 5 भावों में हो तथा गुरु लग्न में हो तो जातक समस्त शास्त्रों का ज्ञाता और यदि शनि के नवांश में हो तथा शुक्र एवं गुरु लग्न में हो तो बटुक अत्यन्त निर्लज्ज व दयाहीन होता है।

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ ।

समस्तवेदविद् व्रती यमांशगेतिऽनिर्घृण: ।।

यज्ञोपवीत में अनध्याय-

शुचिशुक्रपौषतपसां दिगश्विरुद्रार्कसंख्यसिततिथयः ।

भूतादित्रियाष्टमी सङ्क्रमणं च व्रतेष्वनध्यायाः ।।

आषाढ़, ज्येष्ठ, पौष और माघ मासों के शुक्लपक्ष को क्रम से 10, 2, 11, 12 ये तिथियाँ अर्थात् आषाढ़ शुक्ल पक्ष दशमी, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, पौष शुक्ल एकादशी एवं माघ शुक्ल द्वादशी और सभी मासों के दोनों पक्षों की चतुर्दशी से 14, 15, 30, 1, 8 तिथियाँ तथा संक्रान्ति ये अनध्याय हैं। इनमें उपनयन नहीं करना चाहिए।

प्रदोष का लक्षण-

द्वादशी तिथि में अर्ध रात्रि से पूर्व त्रयोदशी हो जाए, षष्ठी के दिन डेढ़ पहर रात से पूर्व सप्तमी हो तथा तृतीया में प्रथम प्रहर के मध्य में चतुर्थी लगने पर प्रदोष होता है।

अर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्निमैः ।

रात्र्यर्धं सार्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात् ।।

ब्रह्मौदन संस्कार-

ब्रतबन्ध के बाद उसी दिन सायंकाल होने वाले ब्रह्मौदन पाक से पूर्व यदि कोई उत्पात (अकाल, वृष्टि, उल्कापातादि) या अनध्याय आ जाय तो उसकी शान्ति करके ब्रह्मौदन पाक कर्म करें।

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद् व्रतबन्धनानन्तरं यदि चेत् ।

उत्पातानध्ययनोत्पत्तावपि शान्तिपूर्वकं तत्स्यात् ।।

वेद क्रम से यज्ञोपवीत के नक्षत्र-

वेदक्रमाच्छशिशिवाहिकरत्रिमूलपूर्वासु पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये ।

ध्रौवेषु चाश्विववसुपुष्यकरोत्तरेशकर्णे मृगान्त्यलघुमैत्रधनादितौ सत् ।।

मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल और तीनों पूर्वा नक्षत्र ऋग्वेदियों के लिए, रेवती, हस्त, अनुराधा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य एवं ध्रुवसंज्ञक यजुर्वेदियों के लिए, अश्विनी, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, आर्द्रा, श्रवण ये सामवेदियों के लिए तथा मृगशिरा, रेवती, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र अथर्ववेदियों के लिए उपनयन में शुभ हैं।

5.6 विवाह मुहूर्त्त- बालक सूर्य विचार- जन्मराशि से 3, 6, 10, 11 भावों स्थित सूर्य शुभ, 1,2,5,7,9 भावों में पूज्य और 4, 8, 12 भावों में अशुभ होता है।

बालिका गुरु शुद्धि- जन्मराशि से 2,5, 7, 9, 11 भावों गुरु शुभ, 1, 2, 6, 10 भावों में पूज्य एवं 4, 8, 12 भावों में अशुभ होता है।

दोनों की चन्द्र शुद्धि- चन्द्रमा प्रथम भाव में पूज्य 4, 8, 12 भावों में अशुभ तथा अन्य भावों में शुभ होता है।

यथा- गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानाँ समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात्।

रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धतो विवाहः।। (मु.चि.वि.प्र.12)

विवाह मास निर्णय- मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष एवं मेष राशि में सूर्य हो तो विवाह होते हैं। मिथुन राशि में सूर्य हो तो आषाढ मास में शुक्ल दशमी तक विवाह शुभ होता है। वृश्चिक राशि में सूर्य हो तो कार्तिक, मकर में सूर्य हो तो पौष में और मेष में हो तो चैत्र मास में विवाह होते हैं।

प्रथम गर्भ से उत्पन्न पुत्र एवं कन्या का विवाह ज्येष्ठ मास में अशुभ होता है।

मिथुनकुम्भमृगाऽलिवृषाजगे मिथुनगेऽ रवौ त्रिलवे शुचेः।

अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि।।(मु.चि.वि.प्र.13)

लग्नभङ्गयोग- लग्न से बारहवें भाव में शनि, दशमभाव में मंगल, तृतीय भाव में शुक्र, लग्न में चन्द्रमा और पाप ग्रह शुभ नहीं होते है। लग्नेश, शुक्र एवं चन्द्रमा छठे भाव में अशुभ होते हैं एवं चन्द्र, लग्नेश, शुभ ग्रह एवं मंगल आठवें भाव में अशुभ होते हैं। सप्तम भाव में कोई भी गृह शुभ नहीं होते हैं।

बृहस्पति और शुक्र अस्त हो तो विवाह नहीं करना चाहिए।

नक्षत्र- रेवती , उत्तरफाल्गुनि, उत्तरषाढा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, मूल ,अनुराधा, हस्त, स्वाति आदि नक्षत्र।

इस प्रकार समान्य रूप से विवाह मुहूर्त्त का निर्णय कर सकते हैं।

5.7 प्राण प्रतिष्ठा मुहूर्त्त-

प्रतिष्ठा में मास विचार-

पौष मास (मकर संक्रान्ति के पश्चात्)में प्रतिष्ठा करने से राज्यवृद्धि, माघ में सम्पत्ति, फाल्गुन में द्रव्यलाभ, चैत्र में शुभ, वैशाख में विशेष सुख, ज्येष्ठ में जय, आषाढ़ में यजमान का नाश, श्रावण में राज्य एवं राष्ट्रहानि, भाद्रपद में अपमान, आश्विन में राज्यहानि, कार्तिक तथा मार्गशीर्ष में शत्रुवृद्धि होती है। वसन्त ऋतु सभी वर्गों के लिए शुभ है।

पौषे राजविवृद्धिः स्यान्माघे मासे तु सम्पदः।

फाल्गुने द्रव्यलाभश्च चैत्रे मासि शुभावहा ।।

अतीवसौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहा।

आषाढे स्थापितो देवो यजमानविनाशनः।।

सौरमानेन विज्ञेयः श्रवणे राज्यराष्ट्रहा।

सर्वेषामेव वर्णानां वसन्तश्शोभनो भवेत् ॥

भाद्रे सम्मानहानिः स्यादाश्विनेऽपि च राज्यहा ।

कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथैव हि।।

सर्वेषामेव वर्णानां वसन्तश्शोभनो भवेत॥ (बृ.वा.मा. दे. प्र.4-6)

उग्र प्रकृति देव प्रतिष्ठा-

मातृकाएँ, भैरव, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम (विष्णु) और महिषासुरघातिनी दुर्गा की स्थापना दक्षिणायन में कर सकते हैं। यथा-

मातृ-भैरव-वाराह-नारसिंह-त्रिविक्रमाः

महिषासुरहंत्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥(बृ.वा.मा. दे. प्र.8)

देवविशेषस्थापना - श्रावण में शिवलिङ्ग, आश्विन में भगवती, मार्गशीर्ष में विष्णु, पौष में शेषनाग की स्थापना करें।

श्रावणे स्थापयेल्लिङ्गमाश्विने जगदम्बिकाम्।

मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्पान् पौषेऽपि केचन ॥9।।

देवस्थापना में पक्षविचार-

पक्ष एवं तिथि विचार- प्रतिपदा को छोडकर सम्पूर्ण शुक्ल पक्ष शुभ होता है और कृष्णपक्ष में केवल दशमी तक ही देवस्थापना करें।

जिस देवता की जो तिथि है, उसी तिथि में प्रतिष्ठा शुभ होती है। द्वितीया से दो, पञ्चमी से तीन, दशमी से चार तिथि और विशेषकर पूर्णिमा शुभ होती है।

बलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय।

अन्त्यत्रिधागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षबोऽस्तु ॥

दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र च।

द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात्।।

दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः।10-12

वसिष्ठमत में वार निर्णय-

रविवार को प्रतिष्ठा करने से यश, सोमवार को कल्याण, मंगलवार को अग्निमय, बुधवार को वृद्धि, गुरुवार को दृढता, शुक्रवार को लक्ष्मी की प्राप्ति और शनिवार को स्थिरता आती है। यथा-

कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभीतिप्रदं वृद्धिकरं दृढञ्च ।

लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति ॥ बृ.वा.मा.14॥

वसिष्ठ के मत में शुभ नक्षत्र-

हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रों में सभी देवताओं की स्थापना शुभ होती है। यथा-

हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु ।

तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥ बृ.वा.मा.18

प्रतिष्ठा समय विचार-

पूर्वाह्न में प्रतिष्ठा उत्तम, मध्याह्न में मध्यम और सायंकाल में अधम होती है। अशुभ चन्द्रमा स्वगृह का भी निषिद्ध है। सत्ययुग में रात्रि में भी देवप्रतिष्ठा होती थी; लेकिन कलियुग में रात्रिप्रतिष्ठा अशुभ होती है। यथा-

पूर्वाह्ने चोत्तमं प्रोक्तं मध्याह्ने मध्यमं बुधैः।

सायाह्ने न मया प्रोक्ता स्वगृहे चाशुभे विधौ ॥

कदाचिन्निश्यपि प्रोक्ता प्रतिष्ठा च कृते युगे।

कलौ युगेऽतिदोषाय प्रतिष्ठा निशि मानवैः ॥(22-23)

वसिष्ठमत से प्रतिष्ठा विचार-

देवप्रतिष्ठा का समय रिक्ता तथा अमावास्या तिथि, निन्द्य योग, वैनाशिक नक्षत्र (जन्म नक्षत्र से तेरहवां)और महादोष-युक्त दिन को छोड़कर तारा बलयुक्त चन्द्रमा हो तो देवप्रतिष्ठा शुभ है।

लग्नशुद्धि

पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) से शुद्ध दिन में पूर्वाह्न और शुभ मुहूर्त में जब लग्न पर शुभ ग्रह या शुभ योग की दृष्टि हो, जन्मराशि अथवा जन्मलग्न से अष्टम लग्न नहीं हों, अष्टम स्थान शुद्ध हो, केन्द्र (1, 4, 7, 10) त्रिकोण (5, 9) में तथा 11 वें स्थान में शुभ ग्रह हों तथा चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि, (3,6,11) भाव में हों तो शुभ वेला में प्रतिष्ठा करने वाले को पुत्र, धन, सुख, सम्पत्ति, एवं आरोग्यता प्राप्त होती है।

पञ्चाङ्गशुद्धे दिवसे दिनस्य पूर्वार्द्धभागे शुभदे मुहूर्ते ।

शुभग्रहैर्वीक्षितसंयुते वा न नैधने नैधनशुद्धिलग्ने ॥

केन्द्रत्रिकोणभवमूर्तिषु सद्ग्रहेषु चन्द्रार्क भौमशनिषु त्रिषडायगेषु ।

सान्निध्यमेति निपतं प्रतिमासु देवः कर्तुः सुतार्थसुखसम्पदरोगता च।।(27-28)

शुक्र जिस राशि या नवांश में हो उसी में यदि चन्द्रमा केन्द्र, पञ्चम अथवा एकादश स्थान में हो तो देव प्रतिष्ठाकाल में यदि पूर्वोक्त दोष हों भी तो समस्त प्रकार के दोषों की शान्ति हो जाती है। यथा-

शुक्रस्थितांशे राशेर्वा केन्द्रपञ्चायगे विधौ ।

देवप्रतिष्ठा कालेऽत्र दोषाः सर्वे शमं ययुः ॥29॥

महर्षि वसिष्ठ के अनुसार से दुष्ट लग्न का परिहार-

एकोऽपि जीवो बलवान् तनुस्थः सितोऽपि सौम्योऽप्यथवा बली चेत् ।

दोषानशेषान् विनिहन्ति सद्यः स्कन्दो यथा तारकदैत्यवृन्दम् ॥33॥

जिस प्रकार कार्तिकेय ने तारकासुर आदि दैत्यसमूह का विनाश किया था, उसी प्रकार यदि वृहस्पति, शुक्र अथवा बुध बलवान होकर लग्न में स्थित हों तों सम्पूर्ण दोषों का विनाश कर देते हैं।

वास्तुराजवल्लभ के अनुसार दिशा विचार-

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय की पूर्व दिशा एवं पश्चिममुख स्थापना करें; शिव, जिन, विष्णु, ब्रह्मादि देवों का मुख किसी भी दिशा में किया जा सकता है। सूर्यादि ग्रह, चामुण्डा, मातृगण, कुबेर, गणेश, भैरव की स्थापना दक्षिणमुख और हनुमानजी की नैर्ऋत्यमुख स्थापना करें। यथा-

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः

प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा।

चामुण्डाग्रहमातरो धनपतिद्वैमातुरो भैरवो देवो-

दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत् ॥ (बृ.वा.मा. दे.प्र.प्र.36)

यज्ञ मुहूर्त्त- सूर्य के उत्तरायण होने पर मिश्र संज्ञक (विशाखा, कृतिका) ध्रुव संज्ञक (उत्तरफाल्गुनि, उत्तरषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, मृगशिरा, ज्येष्ठा एवं पुष्य नक्षत्रों रिक्ता(4,9,14) तिथियों को छोड़ अन्य शेष तिथियों में शनि, मंगल और गुरु के शुभ एवं बलवान होने पर शुभ है। शनि, मंगल, गुरु एवं शुक्र के नीच राशिगत और अस्तंगत का निर्णय कर, अन्य ग्रहों से पराजित तथा शत्रु ग्रह की राशि में नहीं होने पर अग्निहोत्र शुभ होता है।

स्यादग्निहोत्रविधिरुत्तरगे दिनेशे मिश्रध्रुवान्त्यशशिशक्रसुरेज्यधिष्ण्ये।

रिक्तासु नो शशिकुजेज्यभृगौ न नीचे नास्तं गते न विजिते न च शत्रुगेहे।। (मु.चि. अ. प्र.1)

कर्क, मकर, मीन एवं कुम्भ के नवांशों तथा लग्नों मे और लग्न में चन्द्रमा व शुक्र के रहने पर अग्न्याधान नहीं करें। सूर्य, चन्द्रमा, गुरु एवं मंगल के त्रिकोण (5,9) केन्द्र (1,4,7,10) तथा 6,3, व एकादश भावों में स्थित होने पर और बुध, शुक्र, एवं शनि के (3,6,11,10 भावों में होने पर, अष्टम भाव ग्रह रहित होने पर, शुभ युक्त व दृष्ट लग्न में अग्न्याधान करना चाहिए।

होमाहुति मुहूर्त्त-

सूर्य नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र तक, तीन-तीन नक्षत्रों में क्रम से सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र, मंगल, गुरु, राहु एवं केतु के मुख में आहुति पहुँचती है। पाप ग्रहों के मुख में आहुति पहुँचना अशुभ है। यथा-

सूर्यभात् त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः।

चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले।। (मु. चि. न. प्र.35)

सूर्य नक्षत्र से वर्तमान दिन नक्षत्र की सारणी

3	3	3	3	3	3	3	3	3	नक्षत्र
सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरु	राहु	केतु	ग्रह
अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	फल

हवन में अग्निवास निर्णय-

वर्तमान तिथि में एक जोड़कर रविवार से वर्तमान दिन की संख्या को जोड़कर उसके योगफल में चार से भाग करने पर शेष तीन और शून्य हो तो अग्नि का वास भूमि पर होता है। अतः सुख वृद्धि होगी। एक शेष रहने पर अग्नि वास स्वर्ग, हवन करने पर प्राण नाश, दो शेष रहने पर पाताल लोक, धननाश होगा। यथा-

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः।

सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च।।(मु.चि.न.प्र.36)

5.9 विभिन्न योग-

दोषनाशक रवियोग-

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ।

चन्द्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसङ्घविनाशकाः ।।

सूर्य अधिष्ठित नक्षत्र से गणना कर उससे 4,9,6,10, 13 ,20 पर यदि चन्द्र हो अर्थात् दिन के नक्षत्र तक नक्षत्र की संख्या आए तो रवियोग दोषों के समूह का नाश कर देता है।

उदाहरण- आश्लेषा नक्षत्र पर यदि सूर्य हो और चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनि में रवियोग हुआ।

सिद्धयोग- यदि शुक्रवार में नन्दा, बुधवार में भद्रा, मंगलवार में जया, शनिवार में रिक्ता, गुरुवार में पूर्णा तिथियाँ हों तो सिद्धयोग होता है।

यथा- रामदैवज्ञ वचन- **सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ।।**

सर्वार्थसिद्धि योग- रविवार को हस्त, मूल, तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), पुष्य और अश्विनी, नक्षत्र हो, सोमवार को श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, मङ्गलवार को अश्विनी, उत्तरभाद्रपद, कृत्तिका, आश्लेषा नक्षत्र, बुधवार को रोहिणी, अनुराधा, हस्त, कृत्तिका, मृगशिरा, गुरुवार को रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य; शुक्रवार को रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु,

श्रवण, शनिवार को श्रवण, रोहिणी, स्वाती नक्षत्र हों तो सभी प्रकार सिद्धियों को देने वाले सर्वार्थसिद्धि योग होते हैं। पूर्वाचार्यों का यह मत है।

जीवेऽन्त्यमैत्राशव्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽन्त्यमेत्राश्व्यदितिश्रवोभम्।

शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्धयै कथितानि पूर्वैः।।

कार्यविशेष में निषिद्ध तिथि-

षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या आदि तिथियों में पुरुष क्रम से तेल, मांस, क्षौर और मैथुन न करे और त्रयोदशी, दशमी, द्वितीया में उबटन न लगाएँ, अमावस्या, सप्तमी एवं नवमी को आँवला युक्त पदार्थ से स्नान नहीं करना चाहिए, यथा-

षष्ठ्यष्टमी भूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम्।

नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैःस्नानममाद्रिगोष्वसत्।।

अशुभयोग-

दग्धयोग - सूर्यादि वारों में रविवार को द्वादशी, सोमवार को ईश-एकादशी, मङ्गलवार को पञ्चमी, बुधवार को अग्नि-तृतीया, बृहस्पतिवार को रस-षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी एवं शनिवार को नवमी तिथि हो तो दग्धयोग होता है।

विषयोग- रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, मङ्गलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी तिथि पड़े तो विषयोग होता है।

हुताशन योग- रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मङ्गलवार को सप्तमी, बुधवार अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी शनिवार को एकादशी हो तो हुताशन योग होता है।

यमघण्ट योग- रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा, मङ्गलवार को शिव-आर्द्रा, बुधवार को मूल, गुरुवार को वह्नि-कृत्तिका, शुक्रवार को ब्राह्म-रोहिणी एवं शनिवार को कर-हस्त नक्षत्र हो तो यमघण्टयोग होता है। ये चारों योग शुभ कार्यों में त्याज्य हैं यथा-

सूर्येशपचाग्निरसाष्टनन्दा वेदाङ्गसप्ताश्विगजाङ्कशैलाः।

सरव्यङ्गिसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्र हुताशनाश्च।।

सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति मघाविशाखाशिवमूलवह्निः।

ब्राह्मं करोऽर्काद्ययमघण्टकाश्च शुभे विवर्ज्या गमनेत्ववश्यम्।।

आनन्दादि योग-

आनन्द, कालदण्ड, धूम्र, धाता, सौम्य, ध्वांक्ष, केतु, श्रीवत्स, वृत्र, मुद्गर, छत्र, मित्र, मानस, पद्म, लुम्ब, उत्पात, मृत्यु, काण, सिद्धि, शुभ, अमृत, मुसल, गद, मातंग, रक्ष, चर, सुस्थिर तथा प्रवर्द्धमान ये योग अपने-अपने नाम के अनुसार फल देने वाले होते हैं।

रविवार को अश्विनी से, सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को आश्लेषा से, बुधवार को हस्त से, गुरुवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ा से, शनिवार को शतभिषा। उपर्युक्त योग के अनुसार वर्तमान नक्षत्र तक गणना करें, उस दिन तक गिनने पर जो संख्या प्राप्त हो उसी संख्या वाला योग उस दिन आनन्दादि स्थिर योगों में से समझना चाहिए।

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्यांक्षकेतू क्रमेण ।
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ ।।
उत्पातमृत्यू किल काणसिद्धी शुभोऽमृताख्यो मुसलं गदश्च ।
मातङ्गरक्षश्चरसुस्थिराख्य-प्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ।।

अशुभ योगों का परिहार-

ध्वाङ्क्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदेऽश्वाः।
धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं दे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे ।।

आवश्यक कार्य होने पर ध्वांक्ष, वज्र, मुद्गर इन योगों के आदि की पाँच-पांच घटी, पद्म लुम्ब की 4 घटी, गदयोग की 7 घटी, धूम्र योग की 1 घटी, काण योग एवं मुसल योग की 2 घटी त्यागकर उनकी शेष घटियों में मांगलिक कार्य किया जा सकता है। परन्तु राक्षस, मृत्यु, उत्पात एवं काल इन योगों की सम्पूर्ण घटियों को त्याग देना चाहिए।

उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धियोग-

द्वीशात्तोयाद्वासवात् पौष्णभाच्च ब्राह्यात्पुष्यादर्यमर्क्षाच्चतुर्भैः ।
स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिवारिऽर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम् ॥

योग	रवि.	सोम.	भौम.	बुध.	गुरु	शुक्र	शनि
उत्पात	विशाखा	पूर्वषाढ़ा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.

मृत्यु	अनुराधा	उत्तरषाढ़ा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्वलेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	श्रवण	पूर्वाभाद्रपद	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूल	धनिष्ठा	उत्तराभाद्रपद	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूर्वाफाल्गुनि	स्वाती

रविवार में विशाखा से चार नक्षत्र, सोमवार में पूर्वाषाढा से चार नक्षत्र, मङ्गलवार में धनिष्ठा से चार नक्षत्र, बुध में रेवती से चार नक्षत्र, गुरु में रोहिणी से चार नक्षत्र, शुक्र में पुष्य से चार नक्षत्र, शनि में उत्तराफाल्गुनी से चार नक्षत्र होने से क्रम से उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धियोग होते हैं।

कुलिकादियोग-

कुलिकः कालवेला च यमघण्टश्च कण्टकः ।

वाराद्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधे जीवे कुजे क्षणः ।।

अभीष्ट दिन से **शनि** तक गणना करने से जो संख्या आए उसको द्विगुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो उस संख्या वाला मुहूर्त **कुलिक** योग। **बुध** तक गणना करने पर जो संख्या प्राप्त हो उसे द्विगुणित करने पर **कालवेला**, **गुरु** तक गिनकर दूना करने पर **यमघण्ट**, **मङ्गल** तक गिनकर दूना करने पर **कण्टक** योग होता है।

उदाहरण- सोमवार को कुलिक आदि योग जानना है तो-

सोम से शनि 5x2= 10 कुलिक।

सोम से बुध 3x2=6 कालवेला।

सोम से गुरुवार 4x2= 8 यमघण्ट।

सोम से मङ्गल 1x2= 2 कण्टक।

मध्यम मान से 2,2, घटी का एक मुहूर्त होता है। स्पष्टमान से दिनमान का 15वां भाग दिन का मुहूर्त और रात्रिमान का 15वां भाग रात्रि का मुहूर्त्त समझना चाहिए लेकिन रात्रि में वारेश से पञ्चम ग्रह से क्रमशः गणना करनी चाहिए।

संक्रान्ति नक्षत्र से शुभाशुभ फल ज्ञान-

जिस नक्षत्र में सूर्य संक्रान्ति हो उससे पूर्व नक्षत्र से गणना करने पर अपना जन्मनक्षत्र 3 नक्षत्र पर्यन्त पड़े तो यात्रा, अग्रिम छः नक्षत्रों में पड़े तो शरीर सुख, अग्रिम तीन नक्षत्रों में तो पीड़ा, अनन्तर छः

नक्षत्रों में पर्यन्त पड़े तो वस्त्र की प्राप्ति, तदनन्तर तीन नक्षत्रों में हो तो धन की हानि और उसके बाद अन्तिम छःनक्षत्रों में हो तो धनागम होता है। जैसा कि मुहूर्त्त चिन्तामणि में कहा गया है-

संक्रान्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽङ्गभे।

सुखं त्रिभे पीडनमङ्गभेंऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः ।।

संक्रान्ति पूर्व नक्षत्र से जन्म नक्षत्र संख्या	3	6	3	6	3	6
फल	यात्रा	सुख	पीड़ा	वस्त्रलाभ	धनहानि	धनागम

शुभ कार्य के आरम्भ करने का मुहूर्त्त-

जन्म राशि अथवा जन्म लग्न से उपचय 3,6,10,11 इन राशियों की लग्न हो, द्वादश और अष्टम भाव शुद्ध हो अर्थात् ग्रह रहित हो। लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो, चन्द्रमा लग्न से 3, 6, 10, 11भावों में स्थित हो तो इस मुहूर्त्त में आरम्भ किये गए सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते ।

चन्द्रे त्रिषडदशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्धति ।।

5.10 क्रय विचार-

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न।

पौष्णाम्बुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ।।

क्रय के नक्षत्र में विक्रय तथा विक्रय के नक्षत्र में क्रय नहीं करना चाहिए। रेवती, शतभिषा, अश्विनी, स्वाती, श्रवण और चित्रा नक्षत्र में क्रय करना शुभ है, विक्रय करना अशुभ है।

विक्रय करने एवं दुकान खोलने का मुहूर्त्त-

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केन्द्रत्रिकोणे शुभैः

षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ।

रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मित्रध्रुवक्षिप्रभै-

लग्ने चन्द्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्वायखे ।।

पूर्वाद्वीश(पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद) विशाखा, कृशानु-कृत्तिका, सार्प-आश्लेषा, यम- भरणी आदि नक्षत्रों में तथा केन्द्र (प्रथम, चतुर्थ, सप्तम), दशम भाव, त्रिकोण (नवम, पञ्चम) इनमें शुभ ग्रह हों, 6,3,11 भावों में पाप ग्रहों के रहने पर कुम्भ लग्न को छोड़कर अन्य लग्नों तथा शुभ तिथि में विक्रय शुभ है। रिक्ता 9, 4, 14 तिथि, मंलवार और कुम्भ लग्न को छोड़कर मित्रसंज्ञक(मृगशिरा, रेवती, चित्रा, एवं अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (उत्तराफाल्गुनी,उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा रोहिणी) क्षिप्रसंज्ञक (अश्वनी, हस्त, पुष्य, अभिजित) नक्षत्रों में लग्न में चन्द्र एवं शुक्र के स्थित रहने पर, द्वादश और अष्टम भाव पापग्रहों से रहित तथा द्वितीय, एकादश, एवं दशमभाव में शुभ ग्रह हो तो दुकान खोलना शुभ है।

5.11 वाहन, घोड़ा-हाथी खरीदने-बेचने का मुहूर्त्त-

क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरुज्जलेशादित्येष्वरिक्तारदिने प्रशस्तम् ।

स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ।।

क्षिप्रसंज्ञक (अश्वनी, हस्त, पुष्य, अभिजित), रेवती, धनिष्ठा, मृगशिरा, स्वाती, शतभिषा और पुनर्वसु नक्षत्रों में, रिक्ता तिथियों को त्यागकर अन्य तिथियों और मङ्गलवार को छोड़कर अन्य दिन में वाहन, घोड़ा खरीदना, बेचना या सवारी में लाना शुभ है। इसी तरह मृदुसंज्ञक(मृगशिरा, रेवती, चित्रा, एवं अनुराधा), क्षिप्रसंज्ञक(अश्वनी, हस्त, पुष्य, अभिजित) और चरसंज्ञक(स्वाती, पुनर्वसु,श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) क्षिप्रसंज्ञक (अश्वनी, हस्त, पुष्य, अभिजित) नक्षत्र में वाहन व हाथी का खरीदना और बेचना चाहिए।

अभिजित नक्षत्र - उत्तराषाढ़ा का अन्तिम भाग तथा श्रवण नक्षत्र के आदि का योग है। जैसा कि अथर्ववेद में प्रमाण है **"अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव"** अर्थात् ब्रह्म देवता का अभिजित् नक्षत्र हमें पुण्य प्रदान करे।(अथर्ववेद.19.7.4.) तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.5.1 में "**अभिजयत्परस्तादभिजितमवस्तात्**" अर्थात् अभिजित् नक्षत्र हमें सर्वत्र जय प्रदान करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.1.1 में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जिससे सबको जीता वह अभिजित् नक्षत्र हमें विजय तथा लक्ष्मी प्रदान करे।

5.12 अभिजित मुहूर्त्त-यह मुहूर्त्त सभी वर्णों के लिए अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसमें सभी प्रकार की मनोकामनाएँ, अर्थसंचय यात्रा आदि कार्यों में प्रशंसनीय है।

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शूद्राणां चापि नित्यशः।

सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यं दिने अभिजित्।। (अथर्ववेद 20)

अभिजित्सर्वकामाय सर्वकामार्थसाधनः।

अर्थसञ्चय मानानामध्वानं गन्तुमिच्छताम्।। (अथर्ववेद 21)

अभिजित मुहूर्त्त का समय- छाया रहित सीधी सूर्य की किरणें बारह अङ्गुल के दण्ड पर ही पड़ें। अर्थात् मध्याह्नकाल। यह मुहूर्त्त दिन का अष्टम मुहूर्त्त है। दिन के 12 बजने से एक घटी (24 मिनट) पूर्व तथा एक घटी के बाद का समय (48 मिनट) अभिजित मुहूर्त्त का होता है। अर्थात् "**चतुर्थमभिजितल्लग्नम्**"। समय स्थानीय दिनमान से ज्ञात होता है।

चतुर्षु चैव वैराजस्त्रिषु विश्वावसुस्तथा।

मध्याह्ने चाभिजिन्नाम अस्मिन् छाया प्रतिष्ठति।।(आथर्वण 8)

इसमें स्वयं भगवान विष्णु अशेष दोषों को सुदर्शनचक्र से नष्ट कर देते हैं। जैसा कि ज्योतिषसारसंग्रह में कहा है- **दिनमध्यगते सूर्ये मुहूर्त्ते ह्याभिजित्प्रभुः।**

चक्रमादाय गोविन्दः सर्वान्दोषान्निकृन्तति।।

लेकिन अभिजित मुहूर्त्त को बुधवार को शुभ कार्यों एवं दक्षिण दिशा की यात्रा में त्यागना चाहिए।

कालहोरा का प्रयोजन

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य ।

कुर्य्यादिक्छूलादि चिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लङ्घ्यः पारिघश्चापि दण्डः ॥

जिस दिन में जो कार्य कहा गया है, वह दिन यदि दूषित हो और उस दिन वह कर्म करना आवश्यक हो तो उस दिन की कालहोरा में भी किया जा सकता है। इसी तरह जिस नक्षत्र में जो कार्य कहे गये हैं वह कार्य उस नक्षत्र के स्वामी के तिथ्यंश (तिथि स्वामी के मुहूर्त) में भी किये जा सकते हैं। मुहूर्त में वारशूल, नक्षत्रशूल और लालाटिक योग का विचार अवश्य ही करना चाहिए। परिघदण्ड का उल्लंघन तो कभी भी किसी प्रकार नहीं करना चाहिए।

इकाई का सारांश- समय सदैव अपनी गति से चलता रहता है। इसलिए समय हमेशा अपनी गति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। अतः वेदोक्त शुभ कार्यों को सम्पादित करने के लिए श्रेष्ठ समय का निर्णय नितान्त अत्यावश्यक है क्योंकि शुभ मुहूर्त्त ही विघ्नों को नष्ट कर कार्यों में सफलता देते हैं। जैसे- जातक को आठ वर्ष तक माता- पिता के पाप कर्मों का फल मिलता है परन्तु अरिष्ट निवारण हेतु जप- तप , दान व औषधियों के द्वारा अरिष्ट को दूर किया जा सकता है तथा जातक के अन्नप्राशन के समय

चन्द्रमा यदि लग्नगत हो तो जातक भिक्षुक के रूप में जीवन यापन करता है। वही यज्ञोपवीत के समय उचित मुहूर्त्त नहीं हो तो जातक के पञ्चम, पञ्चमेश, नवम, नवमेश, दशम, दशमेश व बृहस्पति आदि के शुभ रहने पर भी जातक विद्याहीन रह सकता है परन्तु शुभ मुहूर्त में यज्ञोपवीत करने से जातक श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार विवाह लग्न के आधार पर ही भार्या का शील निर्भर करता है। अर्थात् कुण्डली के अनुसार जिस जातक का शील उचित न हो उसका शील विवाह की शुभ लग्न से शुभ हो जाता है और वह भार्या उचित शील के द्वारा धर्म, अर्थ और पुरुषार्थ को प्राप्त करती है। यदि हम सामान्य कार्यों की बात करें तो जन्म राशि अथवा जन्म लग्न से उपचय 3,6,10,11 इन राशियों की लग्न हो, द्वादश और अष्टम भाव शुद्ध हो अर्थात् ग्रह रहित हो। लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो, चन्द्रमा लग्न से 3, 6, 10, 11भावों में स्थित हो तो इस मुहूर्त्त में आरम्भ किये गए सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होती है लेकिन अनुचित मुहूर्त्त होने पर विपरीत परिणाम प्राप्त होता है।

प्रश्नावली

1. एक दिन तथा एक रात्रि में कितने मुहूर्त्त होते हैं? **तीस** (30)।
2. एक दिन में कितने मुहूर्त्त होते हैं? **पन्द्रह** (15)।
3. कौनसा मुहूर्त्त दिन का अष्टम मुहूर्त्त है? **अभिजित**।
4. कौन- कौनसे नक्षत्रों में सिलाई- कढाई करना शुभ होता है? **पुनर्वसु, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, अश्विनी और पुष्य।**
5. किस वार को कभी भी ऋण न देना चाहिए? **बुधवार** ।
6. किस वार को ऋण वापस करना चाहिए? **मंगलवार।**
7. रेवती, शतभिषक, अश्विनी, स्वाती, श्रवण और चित्रा नक्षत्र में क्या करना शुभ है? **क्रय करना।**

निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए-

1.अभिजित मुहूर्त्त को .....को शुभ कार्यों एवं .....दिशा की यात्रा में त्यागना चाहिए। **बुधवार- दक्षिण।**

2.अभीष्ट दिन से **शनि** तक गणना करने से जो संख्या हो उसको द्विगुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो उस संख्या वाला मुहूर्त ..... योग।**कुलिक योग**

3.गुरुवार को सूर्यास्त होने के बाद एवं .....सूर्यास्त से पूर्व गोधूलि शुभ होती है। **शनिवार को**

।

4.आजीविका के साधन, यश-अपयश आदि का विचार.....से करते हैं। **दशमभाव**

बोध प्रश्न-

1. मुहूर्त्त की क्या आवश्यकता है? तथा शुभ कार्यों को आरम्भ करने के मुहूर्त्त का विश्लेषण कीजिए?
2. अभिजित मुहूर्त्त को स्पष्ट कीजिए।
3. वाहन खरीदने-बेचने के मुहूर्त्तों को लिखिए।
4. विक्रय करने एवं दुकान खोलने के मुहूर्त्त का वर्णन कीजिए।
5. सर्वार्थसिद्धि योगों का वर्णन कीजिए।
6. अक्षरारम्भ एवं विद्यारम्भ मुहूर्त्तों को लिखिए।

इकाई: 6 शुद्ध उच्चारण प्रशिक्षण एवं सामान्य संस्कृत सम्भाषण।

6.1 वर्णमाला

संस्कृतभाषा में पाणिनि के अनुसार 63 व 64 वर्ण (अक्षर) है और यह संस्कृतभाषा वैदिक और लौकिक दो प्रकार की है,

त्रिषष्टिश्चतुष्षष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।

प्राकृते संस्कृते चाऽपि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥

वर्णों के प्रकार- संस्कृतभाषा में तीन प्रकार के वर्ण होते हैं यथा -

1. स्वर 2. अयोगवाह 3. व्यञ्जन।

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।

यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥

अकारादि स्वरवर्ण (21), कादिस्पर्श वर्ण (25), यादि अन्तस्स्थ-वर्ण (4) ऊष्मसंज्ञक वर्ण (4), (8), यमसंज्ञक चार (4) वर्ण होते हैं।

अनुस्वारो विसर्गश्च ×क ×पौ चापि पराश्रितौ।

दुस्स्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च ॥

नासिका स्थान वर्णविशेष अनुस्वार (अं), विसर्ग (अः) 'क' परक अर्धविसर्ग एवं 'ख' परक अर्धविसर्ग व जिह्वामूलीय, 'प' परक अर्धविसर्ग एवं 'फ' परक अर्धविसर्ग उपध्मानीयः, दुःस्पृष्टः (ळ), और प्लुत।

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।

ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि॥ (पाणिनीयशिक्षा 11)

स्वरवर्णाः

स्वतन्त्र रूप से स्पष्ट उच्चारण होने वाले वर्णों को स्वर कहते हैं । पुनः ये तीन प्रकार के होते हैं यथा - ह्रस्व स्वर , दीर्घ स्वर और प्लुत स्वर।

एक मात्रा काल से उच्चारण होने वाले स्वरों को ह्रस्व स्वर कहते हैं। यथा - अ, इ, उ, ऋ, ऌ ।

दीर्घ स्वर-

द्वि मात्रा काल से उच्चारण होने वाले स्वरों को दीर्घ स्वर कहते हैं। यथा - आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ इति।

प्लुत स्वर-

त्रिमात्रिक काल से उच्चारण होने वाले स्वरों को प्लुतस्वर कहते हैं, यथा - आ3, ई3, ऊ3, ॠ3, ऌ3, ए3, ऐ3, ओ3, औ3 ।

अयोगवाह

अनुस्वारः - अं, विसर्गः- अः,

जिह्वामूलीयः × क × ख, उपध्मानीयः - × प × फ।

व्यञ्जन वर्ण

अर्ध मात्रा काल से उच्चारण होने वाले वर्णों को व्यञ्जनवर्ण कहते हैं, इनको दो प्रकार से विभाजित किया गया है यथा वर्गीयव्यञ्जन, अवर्गीयव्यञ्जन।

वर्गीय व्यञ्जन पच्चीस है, यथा -

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	क वर्गीय व्यञ्जन वर्ण।
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	च वर्गीय व्यञ्जनवर्ण।
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	ट वर्गीय व्यञ्जनवर्ण।
त्	थ्	द्	ध्	न्	त वर्गीय व्यञ्जनवर्ण।
प्	फ्	ब्	भ्	म्	प वर्गीय व्यञ्जनवर्ण।

अवर्गीय व्यञ्जन आठ प्रकार के हैं, यथा -

य् व् र् ल् श् ष् स् ह्।

य् व् र् ल् ये अन्तःस्थसंज्ञक एवं श् ष् स् ह् वर्ण ऊष्म संज्ञक होते हैं, इस प्रकार 33 व्यञ्जन वर्ण है, यथा-

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चाऽर्धमात्रिकम् ॥ (याज्ञवल्क्य शिक्षा 16)

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।

शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम् ॥ (पाणिनीयशिक्षा 49)

संयुक्त-अक्षर -

क्ष-त्र-ज्ञ- वर्ण संयुक्त वर्ण हैं अर्थात् ये वर्ण दूसरे वर्णों के संयोजन ही अपनी पूर्णता को प्राप्त करते हैं, यथा- ककार-षकार का योग करने **क्ष**, जकार-ञकार का योग करने पर **ज्ञ** और तकार-रकार के योग से त्र बनता है।

क् + ष् + अ = **क्ष**

ज् + ञ् + अ = **ज्ञ**

त् + र् + अ = **त्र** इत्यादि

6.2 माहेश्वर सूत्र-

1. अ इ उ ण्	2. ऋ ऌ क्	3. ए ओ ङ्
4 ऐ औ च्	5. ह य व र ट्	6. ल ण्
7. ञ म ङ ण न म्	8. झ भ ञ्	9. घ ढ ध ष्
10. ज ब ग ड द श्	11 ख फ छ ठ थ च ट त व्	
12. क प य्	13. श ष स र्	14 ह ल्

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पञ्चवारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥ पाणिनीयशिक्षा

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।

जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ पाणिनीयशिक्षा

वर्णों के उच्चारण स्थान	
अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः	अ क् ख् ग् घ् ङ् ह् :
इचुयशानां तालु	इ च् छ् ज् झ् ञ् य् श्

ऋटुरषाणां मूर्धा	ऋ ट् ठ् ड् ढ् ण् र् ष्
लृतुलसानां दन्ताः	लृ त् थ् द् ध् न् ल् स्
उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ	उ प् फ् ब् भ् म्× प्× फ्
ञमङणनानां नासिका च	ञ् म् ङ् ण् न्
एदैतोः कण्ठतालु	ए ऐ
ओदौतोः कण्ठोष्ठम्	ओ औ
वकारस्य दन्तोष्ठम्	व्
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्	× क× ख
नासिका अनुस्वारस्य	ँ

6.3 सन्धि परिचय

सन्धि संस्कृत भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है और इस भाषा का यह सहज स्वभाव है। संधि का अभिप्राय है दो वर्णों का परस्पर मिलन। इन दोनों के संयोग से एक अन्य रूप बन जाता है। वर्णों की अत्यन्त समीपता को सन्धि अथवा सहिता कहते हैं (परः सन्निकर्षः संहिता) वस्तुतः व्यवहार, बोलचाल में अपनी प्रकृति के अनुसार वर्ण मिल जाते हैं। पृथक् पृथक् करके नहीं, अपितु सम्मिलित रूप में उच्चारण किया जाता है। यथा-

देव+ आलयः, राम+अयन = रामायण, विद्या+आलय= विद्यालय, महा+ऋषि= महर्षि, यदि+अपि =यद्यपि, सत्+आचार: + सदाचार।

सहज भाव से उच्चारण हो जाता है। यह संधि एक पद में, धातु-उपसर्ग में तथा समाज में नित्यरूप से होती है, पर वाक्य में बक्ता की इच्छा पर निर्भर है वह वर्णों को पृथक् पृथक् रूप से भी उच्चारण कर सकता है, यथा इदम् आम्रफलम् अस्ति अथवा इदमाम्रफलमस्ति। संधि में पूर्व तथा उत्तरवर्ती दो वर्षों का संयोग होता है और पूर्ववर्ती वर्ण के अनुसार इस संधि का नामकरण होता है।

संहितैकपदे नित्याऽनित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

मुख्यरूप से सन्धि के तीन प्रकार -इस दृष्टि से यह संधि तीन प्रकार की होती है, **१. स्वरसंधि २. व्यञ्जनसंधि तथा ३. विसर्गसंधि**

१.स्वर सन्धि के प्रकार- स्वरवर्ण के साथ स्वरवर्ण के मिलने से जो विकार होता है उसे स्वर सन्धि कहते हैं। यह सन्धि मूलत: आठ प्रकार की होती है, यथा-

1. **दीर्घ सन्धि**, 2. **गुण सन्धि**, 3. **वृद्धि सन्धि**, 4. **यण सन्धि** 5 **अयादि सन्धि** 6. **पूर्वरूप, सन्धि** 7. **पररूप सन्धि तथा** 8. **प्रकृति भाव।**

	सन्धिकार्य	उदाहरण
अकः सवर्णे दीर्घः	सवर्णदीर्घ	देवालयः, श्रीशः, होतृकारः
वृद्धिरेचि	वृद्धिसन्धि	देवौदार्यम्, सदैव, वेदैश्वर्यम्
आद्गुणः	गुणसन्धि	सूर्योदयः, महर्षि, सप्तर्षयः
इको यणचि	यण्-सन्धि	सुध्युपास्यः, स्वागतम्, पित्रादेशः, लाकृतिः
एचोऽयवायावः	अयादिसन्धि	हरये, भवनम्, नायकः
एङि पररूपम्	पररूप	प्रेजते, प्रौषति
ओमोङोश्च	पररूप	शिवेहि, ईश्वरायोम्
एङः पदान्तादति	पूर्वरूप	हरेऽव, विष्णोऽव
प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्	प्रकृतिभाव	एहि कृष्ण 3 अत्र क्रीडेम
ईदूदेद्विवचनम्	प्रकृतिभाव	श्रुती इमे, बालिके एते, विष्णू इमौ
अदसो मात्	प्रकृतिभाव	अमी ईशाः, अमी अध्यापकाः
इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च	सा. प्रकृतिभाव	योगि आगच्छति
ऋत्यकः	प्रकृतिभाव	सप्तऋषयः
अचो रहाभ्यां द्वे	द्वित्वकार्य	गौर्य्यौ
उपसर्गादति धातौ	वृद्धिसन्धि	प्रार्च्छति

२.व्यंजन अथवा हल् सन्धि - व्यंजनवर्ण के साथ व्यंजन अथवा स्वरवर्ण का संयोग होने पर जो विकार होता है उसे व्यंजन सन्धि कहते हैं।

जैसे उद् +चारण= उच्चारण

व्यञ्जन सन्धि के कई भेद हैं। यहाँ पर कुछ मुख्य भेदों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

१.श्चुत्व सन्धि- २.ष्टुत्वसंधि- ३.जश्त्व सन्धि- इस सन्धि के दो रूप है **(क) पदान्त जश्त्व सन्धि (ख.)अपदान्त जश्त्व सन्धि- ४.अनुनासिक सन्धि-५. चर्त्व सन्धि -६. अनुस्वार सन्धि-७ . लत्व सन्धि- ८. छत्व सन्धि- ९. तुगागम सन्धि-१०. षत्व विधान-**

हल् सन्धि

सूत्र	सन्धि	उदाहरण
स्तोः श्चुना श्चुः	श्चुत्व सन्धि	रामश्शेते, रामश्चिनोति, यज्ञः
ष्टुना ष्टुः	ष्टुत्व सन्धि	रामष्षष्ठः, रामष्टीकते, कृष्णः
झलां जश् झशि	जश्त्व सन्धि	सिद्धिः, बुद्धिः
झलां जशोऽन्ते	जश्त्व सन्धि	वागीशः, सुबन्तम्
यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा	अनुनासिक सन्धि	एतन्मुरारिः, सन्मार्गः
प्रत्यये भाषायां नित्यम्	नित्य अनुनासिक सन्धि	वाङ्मयम् चिन्मयम्
मोऽनुसारः	पदान्त-अनुस्वार सन्धि	मातरं वन्दे, सत्यं शिवम्
नश्चापदान्तस्य झलि	अपदान्त-अनुस्वार सन्धि	नंस्यति, यशांसि
खरि च	चर्त्व सन्धि	उत्थानम्, लप्स्यते, सत्कारः
शश्छोऽटि	छत्व सन्धि	तच्छिवः
वा पदान्तस्य	पदान्त-परसवर्ण सन्धि	धर्मं चर, धर्मञ्चर
अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः	अपदान्त-परसवर्ण सन्धि	शान्तः, अङ्कितः

विसर्ग सन्धि

सूत्र	सन्धि	उदाहरण
विसर्जनीयस्य सः	विसर्ग के स्थान पर सकारादेश	नमस्ते, विष्णुस्त्राता
वा शरि	विसर्ग का विकल्प से विसर्गादेश	हरिः शेते, हरिश्शेते
ससजुषो रुः	सस्य रुः आदेशः	नमर् ते, रामर्

अतो रोरप्लुतादप्लुते	रोः उः आदेशः	शिवोऽर्च्यः,देवोऽर्चनीयः
रोऽसुपि	अह्ः रेफादेशः	अहर्गणः
रोरि	रेफस्य लोपादेशः	अन्त राष्ट्रियः, गुरु राजते
ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः	अणः दीर्घादेशः	पुना रमते, गुरू राजते,
एत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि	सोर्लोपादेशः	एष विष्णुः, स शम्भुः
सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्	सोर्लोपादेशः	सैष दाशरथी रामः
हशि च	रोः उः आदेशः	मनोरथः, रामो जयति

समास परिचय-

6.4 समास परिचय

समास पाँच प्रकार के होते हैं (1)केवल समास (2) अव्ययी भाव समास, (3) तत्पुरुष समास, इसके भेद (अ) कर्मधारय समास, (आ) द्विगु समास. (4) द्वन्द्व समास, (5) बहुव्रीहि समास।

विस्तार रूप से सहायक पाठ्यक्रम में किया जाएगा।

6.5 शब्दरूप सामान्य परिचय

संस्कृत भाषा में प्रत्येक शब्द क्रिया और प्रत्ययों के योग से बने हैं, प्रत्ययों से लिंग का निर्धारण हो जाता है। संस्कृत भाषा में जो शब्दरूप पढे जाते हैं वे तीन लिङ्गों में पठित होते हैं ,इन शब्दरूपों का सञ्चालन एवं निर्माण सु औ जश् आदि प्रत्ययों के योग से होते हैं, इस कारण इन्हें सुबन्त शब्दरूप भी बोलते हैं। संस्कृतभाषा में सुबन्त एवं तिङन्त दो प्रकार के शब्द होते हैं जिसमें सुबन्त को शब्दरूप या कर्तारूप एवं तिङन्त को धातुरूप या क्रियारूप कहते हैं।

सुबन्त शब्द रूप-

सुबन्त - सुप् प्रत्ययान्त सुबन्त। सुबन्त, तिङन्त की पदसंज्ञा होती है। साथ ही सुबन्त की प्रातिपदिक संज्ञा भी होती है। यथा - राम + सु (रामः)। राम प्रातिपदिक है तथा सु प्रत्यय है, इसमें लिङ्ग, विभक्ति और वचन संयुक्त हैं।

सुबन्त प्रत्यय

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (:)	औ	जस् (अः)
द्वितीया	अम्	औट (औ)	शस् (अः-अन्)
तृतीया	टा (आ,इन)	भ्याम्	भिस् (भि:)
चतुर्थी	ङे. (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य:)
पंचमी	ङसि((अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य:)
षष्ठी	ङ्स् (अः)	ओस् (ओ:)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओ:)	सुप् (सु)

राम शब्द रूप (पुँल्लिङ्ग)

विभक्ति	**एकवचनम**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामै:
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयो:	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयो:	रामेषु
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!

धातुरूप का सामान्य परिचय

तिङन्त-

तिङ अन्त :तिङन्त :, तिङ प्रत्यय जिसके अन्त में हो वह तिङन्त शब्द कहलाते है, तिङन्त को ही क्रिया कहते हैं, इस क्रिया का मूलरूप धातु है। ये धातु तीन प्रकार के होते हैं। यथा - परस्मैपदी,

आत्मनेपदी और उभयपदी। संस्कृतभाषा में धातुओं के काल निर्णय के लिए दस लकार हैं। यथा - लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ् एवं लृङ् । लेट् का प्रयोग वेदों में होता है।

पुरुष- क्रिया अर्थबोधक पुरुष तीन प्रकार के होते हैं - प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष, और उत्तमपुरुष। प्रथमपुरुष के कर्ता वचन के अनुसार इस प्रकार होते हैं यथा - सः तौ ते, रामः रामौ रामाः आदि। मध्यम पुरुष के कर्ता युष्मद् शब्द (त्वम्, युवाम्, यूयम्), एवं उत्तम पुरुष के कर्त्ता अस्मद् शब्द (अहम्, आवाम्, वयम्) इस प्रकार सरल मानक से कर्त्ता का निर्धारण कर सकते हैं। यथा-

पुरुषः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	सः/रामः लिखति	तौ/रामौ लिखतः	ते/ रामाःलिखन्ति
मध्यमपुरुषः	त्वं लिखसि	युवां लिखथः	यूयं लिखथ
उत्तमपुरुषः	अहं लिखामि	आवां लिखावः	वयं लिखामः

1.7 सामान्य संस्कृत एवं अंग्रेजी सम्भाषण

दैनिकशिष्टाचारः

हरिः ॐ! Hello!

सुप्रभातम् - Good morning.

नमोनमः/नमस्कारः/ नमस्ते । Good afternoon/Good evening.

शुभरात्रिः / Good night.

धन्यवादः/ Thank You.

ज्योक्/ Bye

स्वागतम् / Welcome.

क्षम्यताम् / Excuse/Pardon me.

चिन्ता मास्तु / Dont worry.

कृपया /Please.

पुनः मिलामः /See you/ Let us meet again

अस्तु /All right./O.K.

श्रीमन् /Sir.

मान्ये/आर्ये / महोदया/ Madam.

साधु/समीचीनम् / शोभनम्/ Very good

General introduction

भवतः नाम किम् ? / What is your name? (पुरुष)

भवत्याः नाम किम् /What is your name? (स्त्री)

मम नाम अस्मि शर्मा। My name is Asmi sharma.

मम नाम महाकालेश्वरः/ My name is Mahakaleshwar.

एषः मम मित्रम्/ This is my friend

एतेषां विषये श्रुतवान् / I have heard of them

एषा मम सखी/ This is my friend' (fem.).

भवान् किं करोति ? / What do you do? (पुरुष)

भवती किं करोति? /What do you do? (स्त्री)

अहं देवालय- प्रबन्धकः अस्मि। / I am a Temple Manager.

अहम् अध्यापकः अस्मि। / I am a teacher (पुरुष)

अहम् अध्यापिका अस्मि। / I am a teacher. (स्त्री)

देवालय- प्रबन्धकः / Temple Manager

तन्त्रज्ञः = Engineer;

प्राचार्यः Professor

भक्तः Devotee

न्यायवादी = Lawyer

विक्रयिकः Salesman:

उपन्यासकः = Lecturer

अहं राष्ट्रिय-आदर्शवेदविद्यालये कार्यं करोमि। = I work in a RAVV.

देवालये/ In aTemple.

महाविद्यालये / In a college

वित्तकोषे/ In a bank:

चिकित्सालये / In a hospital

पुस्तकालये / In a Library

कुशलं वा ? / Are you fine?

कथमस्ति भवान् ? /How are you?

गृहे सर्वे कुशलिनः वा? / Are all well at home?

सर्वं कुशलम्। / All is well.

कः विशेषः (का वार्ता ?) = What news?

भवता एवं वक्तव्यम् । You have to say.

कोऽपि विशेषः ? Anything special?

भवान् (भवती) कुतः आगच्छति ? Where are you coming from?

I am coming from school/house/.... अहं शालातः, गृहतः तः

Where are you going? भवान् भवती कुत्र गच्छति ?

Let us see if it can be done. भवति वा इति पश्यामः।

ज्ञातं वा ? / Understand?

कथम् आसीत् ? / How was it?

अङ्गीकृतं किल ? /Agreed?

कति अपेक्षितानि /How many do you want?

अद्य एव वा ? / Is it today?

अहं नवमीकक्ष्यायां पठामि। I am in ix Std..

अहं कक्षायायां पठामि । = I am in .....

भवतः ग्रामः कः/ Where are you from? I am from…….

मम ग्रामः उज्जैन

छात्राः = Students

सिद्धता कथम् अस्ति ? How is your preparation?

पाठाभागः एवं न समाप्तः। Portions have not been completed.

गणितश्रवणमात्रेण मम शिरोवेदना । Mathematics is a head-ache to me.

अद्य किमपि न पठित्तवान् एव । Couldn't read much today.

भक्ताः कुत्र सन्ति? Where are the devotees ?

मम अक्षराणि न सुन्दराणि । My handwriting is not good.

एतां भगवद्गीतां पठितवान् वा? Have you read this Bhagavadgita?

बहु सम्यक् अस्ति भो। = It is very interesting.

अहं पूर्वमेव पठितवान् । = I read it long ago.

शीघ्रं पठित्वा ददामि भोः। I'll return it early after reading.

अद्य उत्थाने विलम्बः सञ्जातः। Got up a bit late today.

अहं गृहे एव त्यक्त्वा आगतवान् । I have left it at home. अद्य तु विरामः । Today is a holiday, anyway.

भवतः कक्षाशिक्षकः कः? Who is your class teacher?

अद्य समवस्त्रेण गन्तव्यं वा ? Do we have to go in our uniforms today?

यावत् शालां गतवान् तावत् घण्टा ताडिता। The bell went by the time I reached school.

श्रीमन्, अन्तः आगच्छामि वा ? May I come in, sir?

श्रीमन्, विशेषकक्ष्यां स्वीकरोति वा?

May I borrow your pen? लेखनीं एकवारं ददाति वा?

टिप्पणीं किञ्चित् ददात्ति वा? Would you kindly lend me your notes ?

ह्यः एव गिरीशः स्वीकृतवान्। Girish borrowed it yesterday.

अहं तद्दिने वर्गं न आगतवान् आसम्म । = I did not attend the class that day. आगच्छतु भोः, क्रीडामः। Come on, let's play.

पठनीयं बहु अस्ति भोः । = I have a lot to read, you know.

किं मम पठनीयं नास्ति वा? Do you think I don't have anything to read?

सम्यक न स्मरामि भोः । = I do not remember exactly.

तिष्ठतु, अहं स्मरामि तत् । Wait, I know it.

श्वः आरभ्य सहाध्ययनं कुर्मः। Let us do combined study from tomorrow.

1. परीक्षा = Examination

परीक्षारम्भः कदा इति ज्ञात्तः वा? Do you know when is the examination going to begin?

प्रवेशपत्रं स्वीकृतं वा? Have you taken the admission ticket?

परीक्षा अग्रे गता । = The examination is postponed.

वेलापत्रिका आगता वा ? Has the examination time table come?

परीक्षा कथम् आसीत्! How was the exam. ?

प्रश्न पत्रिका किञ्चित् क्लिष्टा आसीत् = The question paper was a bit tough.

अतीव सुलभा आसीत् । = It was very easy.

अहं प्रथमश्रेण्याम् उत्तीर्णः। I have passed in I class.

ह्यः फलितांशः प्रकटितः। The result was announced yesterday.

अङ्कद्वयेन प्रथमश्रेणी न लब्धा। I missed I class by two marks.

प्रश्नेषु विकल्पः एव नासीत् । There was no choice at all.

फलितांशः श्वः ज्ञातः भविष्यति। The result will be announced tomorrow.

रमेशः उत्तीर्णः वा? Has Ramesh passed?

एकं पत्रम् अवशिष्टं इति उक्तवान्। yet. He has told me that he has to complete one paper

पठितं किमपि न स्मरामि भोः । Don't remember what I have read, you know.

दशवारं पठितवान्, तथापि न स्मरामि । = I read it ten times, even then I do not remember.

प्रायशः द्वितीयश्रेणी लभ्येत। Most probably, I will pass in II class.

अस्माकं गणे सर्वेऽपि उत्तीर्णाः। Everyone passed in our batch.

प्रतिशतं कति अङ्काः प्राप्ताः ? What is the percentage?

कार्यालयः = Office

भवान् कति दिनानि विरामं स्वीकरोति ? How many days of leave are you taking ?

Of late the weight of work is unbearable. एषु दिनेषु महान् कार्यभारः।

इमा सूचनाफलके स्थापयतु । Put this up on the notice board.

अत्र हस्ताङ्कनं करोतु । Sigh here, please.

सः विरामं स्वीकृतवान्। He is on leave.

अस्मिन् विषये पुनः अपि चिन्तयामि। I will think about this again.

आगामि सप्ताहे मां पश्यत्तु । See me next week.

अस्मिन् विषये अनन्तरं वदामि। I will tell you about it later.

एतत् अहम् अवश्यं स्मरामि । = I will certainly remember this.

भवदुक्तं सर्वं ज्ञातवान् भोः । = I have understood what you said.

अत्र तस्य एव सर्वाधिकारः । He is all in all here.

मम कृते काऽपि दूरवाणी आगता वा =

Any phone calls for me?

भवतः कृते दूरवाणी आगता आसीत्। = There was a phone call for you.

भवान् कस्मिन् स्थाने नियुक्तः अस्ति? Which post do you occupy in the office? एषः

सर्वदा आगत्य पीडयति । He troubles me always.

इदानीं समयः अतीतः। It is getting late.

कृपया श्वः आगच्छतु । Come tomorrow.please.

सः आगतवान् इति स्मरामि। I remember, he came here.

पञ्चवादनपर्यन्तं अत्रैव आसीत्। He was here till 5.00.

माम् आहूतवान् वा ? Did you call me?

तद् व्यवस्थाम् अहं करोमि । I will see to that arrangement.

कार्यालयस्य समाप्तिः कदा? When does your office close ?

एतद्विषये श्वः पुनरपि स्मारयतु। Remind me about this tomorrow.

तम् अत्र आगन्तुं सूचयतु । Ask him to come here.

किमर्थम् इदानीम् अपि कार्यं न आरब्धम् ? Why hasn't the work begun ? अन्येषां उपहासेनेव कालं यापयति । He spends time criticizing othere.

मया किं करणीयं, वदतु। Tell me what I should do.

अहं किं करोमि भोः ? What shall I do?

अस्तु परिशीलयामः। Be it so, let us see.

भवान् शीघ्रं प्रत्यागच्छति वा? Are you going to be back soon?

कृपया उपविशत् । Please, sit down.

पञ्चनिमेषेषु एतद् कृत्वा ददामि। I'll get it done in five minutes.

अद्य सः अत्र नास्ति किल । As you know, he is not here today.

सः एकसप्ताहाभ्यन्तरे आगच्छेत्। He may be back in a week's time.

आरोग्यम् = Health

मम आरोग्यं समीचीनं नास्ति। I am not well..

महती पादवेदना । Terrible leg pain.

सामान्यतः शिरोवेदना तदा तदा आगच्छति । Generally I get headache now and then.

किञ्चित् ज्वरः इव Feel a little feverish...

वैद्यं पश्यतु । = Consult a doctor.

मम वमनशङ्का । I feel like vomitting.

वैद्यस्य निर्देशनं स्वीकरोतु । = Get a doctor's advice.

किमर्थं कण्ठः अवरुद्धः? Why is there the blocking of the throat ?

अहम् अतीव श्रान्तः । = I am very tired.

तस्य आरोग्यं कथम् अस्ति? How is his health?

अद्य किञ्चित् उत्तमा स्थितिः अस्ति। A bit better today.

प्रातः आरभ्य किञ्चित् शिरोवेदना । Slight head-ache since morning.

आरोग्यं तावत् सम्यक नास्ति । Somehow, my health is not good.

वैद्यं कदा दृष्टवान्? When did you see the doctor last?

उत्साहः एवं नास्ति भोः । Don't feel active, you know.

ह्यः तु स्वस्थः आसीत्। He was all right yesterday.

किम् अद्य अहं भोजनं करोमि वा? Shall I have my meals today?

अद्य ज्वरः कथम् अस्ति How is the fever today?

यथावत्। As usual.

ज्वरपीडितः वा? कदा आरभ्य Fever? Since when?

समयः / Time

कः समयः ? /What is the time?

सपाद नववादनम्। /A quarter past 9 O claock.

द्विवादने अवश्यं गन्तव्यम्। / I must leave at 2.

एकं यानम् त्रिवादने अस्ति। /There is a bus at three.

पादोन षड्वादने भवान् मिलति वा ? /Will you meet at a quarter to six?

सार्धपञ्चवादने अहं गृहे तिष्ठामि। / I will be at home at half past five.

संस्कृतवार्ताप्रसारः सायं दशाधिक षड्वादने। / The Sanskrit news bulletin is at 6.10 p.m

सार्धं द्विघण्टात्मकः कार्यक्रमः। / It is a programme for two and a half hours.

षड्वादनपर्यन्तं तत्र किं करोति ? /What are you going to do there till six o'clock ?

विद्यालयः एकादशवादनतः किल/ The school is from 11 o'clock, isn't it?

इतोऽपि यथेष्टं समयः अस्ति। /Still there is a lot of time.

सः पञ्चवादनतः षडवादनपर्यन्तं योगासनं करोति। / He does Yogasana from 5 AM. to 6AM.

मम घटी निमेषद्वयम् अग्रे सरति। /My watch goes two minutes fast every day.

समये आगच्छतु। / Come in time.

अरे। नववादनम्। / Oh! it is 9 o'clock.

भवतः आकाशवाणी समयः वा?/ Is yours the radio time?

इदानीं समयः कः?/What is the time now?

किमर्थम् एतावान् विलम्बः?/ Why (are you) so late?

इदानीं भवतः समयावकाशः अस्ति वा? /Are you free now? (Can you spare a few

हरिः ओम। /Hello

प्रतिष्ठानस्य कार्यालयः वा?/ Is it the Pratishthana office?

डॉ.मुरलीमहोदयस्य गृहं वा?/ Is it Dr. Murali's house?

18. दूरवाणी / Telephone

एषा नव षट शून्य .....चत्वारि वा/ Is it 6 कः तत्र ? (कः सम्भाषणं करोति ?) /Who is speaking, please?

अहं कृष्णः।/ I am Krishna, speaking. कः अपेक्षितः ? .Whom do you want to speak to ?

कृष्णः गृहे अस्ति वा? /Is Mr. Krishna at home?

क्षम्यतां. सः गृहे नास्ति। / Sorry, he is not at home.

कृपया एतत् कृष्णं सूचयतु। / Would you kindly pass this on to Mr. Krishna?

कृपया तम् आहूयति वा? Would you please call him ?

अस्तु, एकक्षणं तिष्ठतु। / Yes, wait a minute, please.

कः दूरवाणीं कृतवान् इति वदामि ? / Who shall I say phoned him up ? सः श्वः आगच्छत । He may be back, tomorrow.

अस्तु, श्वः पुनः दूरवाणीं करोमि। / O.K. I will ring him up again tomorrow.

किम् इदानीम् अपि न आगतवान् वा?/ What? Hasn't he come yet?

तस्य दूरवाणी संख्या का ?/ What is his phone number?

गृहे मिलेत् वा ?/ Will he be available at home?

मद्रासतः इदानीम् अपि न आगतवान्। Not yet returned from Madras./ अवश्यं सूचयामि / Certainly I will inform him.

स्थापयामि वा ?/ Shall 1 put down the phone? (Shall I hang up?).

किञ्चित् उच्चैः वदतु ?/ please Speak louder.

अस्तु। Ok धन्यावादः /Thank you

कारक प्रकरण-

हिन्दी भाषा में कारकों की संख्या 8 है लेकिन संस्कृत भाषा में छः कारक हैं। जिनको संस्कृत भाषा में कारक नहीं माना गया है वे सम्बन्ध तथा सम्बोधन कारक हैं। इन दोनों का क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, अतः इन दोनों को कारक की श्रेणी में नहीं रखा गया है। जैसे - 'कृष्ण ने पाण्डु के पुत्र अर्जुन से कहा।' इस वाक्य में पाण्डु का सम्बन्ध पुत्र से तो है लेकिन 'कहा' क्रिया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः यह कारक नहीं कहा जाएगा। इस प्रकार संस्कृत भाषा में छ कारक (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण) तथा सात विभक्तियाँ (प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी) होती हैं।

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।

अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

सामान्य रूप में इनके हिन्दी अर्थ नीचे लिखे जा रहे हैं -

विभक्ति	कारक	चिह्न (हिन्दी/अंग्रजी में)
प्रथमा	कर्ता	ने
द्वितीया	कर्म	को , TO
तृतीया	करण	से (के द्वारा) BY ,WITH
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए, को , FOR
पञ्चमी	अपादान	से (अलग होने के अर्थ में) FROM
षष्ठी	सम्बन्ध	का, की, के, ना, नी, ने, रा, रो, रे OF
सप्तमी	अधिकरण	में, पर, पै, ऊपर, IN /ON
सम्बोधन	सम्बोधन	भो,हे, , अरे, ओ

यथा- प्रतिष्ठानस्य प्राचार्यः पादकन्दुकं हस्तेन छात्राय छात्रावासात् क्रीडाक्षेत्रे ददाति।

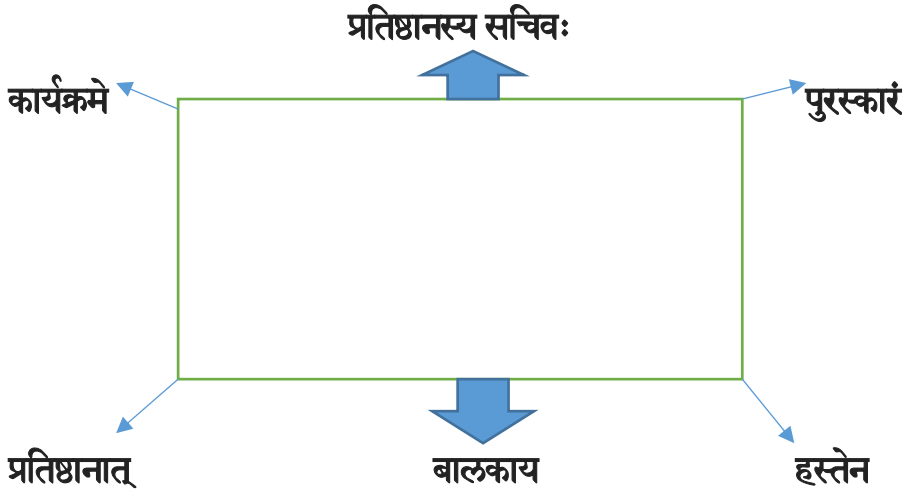
प्रतिष्ठानस्य सचिवः
कार्यक्रमे
पुरस्कारं
प्रतिष्ठानात्
बालकाय
हस्तेन

इकाई : 7 सामान्य अंग्रेजी पत्रों का परिचय

The different types of letters can be divided into two basic classes.

There are many types of letters- Personal letters formal and informal.

Informal letters: Informal letters are written to relatives and friends. In this letters the salutations are Dear Asmi and Dear sir etc.

Formal letters: Formal letters a formal letter is written to acquaintances invitations to parties are included in these letters. The salutations in such letters are Mr. Vishnu, Dear Ram etc.

1) Unofficial Letters- Letters containing personal or family expressions are called informal letters. These letters do not require any rules.

2) Formal Letters- Letters bound by various rules and regulations are called formal letters. Here we will study only formal letters

Official letters- Official letters are addressed to government or semi government offices and department there also you for communication to member of public body's government servant individual seeking government protection of his rights and requesting to the government to fulfill certain public duties also use this letter.

Informal Letters	Formal Letters
Parents	Officials
Relatives	Government
Friends, etc.	Business etc.

The format of the letter writing-

Simplicity- Always write in simple, plain and clear language.

Sentencing - Use the word order, idioms, sentences and short paragraphs and fluent sentences in the syntax.

Concise - Objective- The subject to be written in the letter should be unmistakably clear in the minimum of words.

Use of punctuation- The use of semicolons, commas, full stop, parentheses etc. in the letter is appropriate.

Parts of letters

(1) In formal letters, the name and address of the sender are written at the top of the page on the right side, the date below and the reference and letter number on the left side of the page.

(2) Name, post, name of office, location, district, city and PIN code of the recipient of the letter should be written on the left side of the page.

(3) Subject Indication- The subject on which the letter is being written should be written on the left after the description of the recipient in brief.

(4) Address- The addressing indicator is used on the left side of the letter after the subject mark.

(5) The original content of the letter is written afterwards.

(6) The content of the termination - indicative word- letter is usually written verbatim in the formal letters of the sender to the receiver in his relation and subject.

(7) After the formal word, the signature of the sender, the full name and the name of the institution should be written in brackets below the signature.

(8) The letter to be attached to the left.

(9) Give details of the institution or officer to whom the formal letter is addressed.

PERMISSION LETTER

To,
The Inspector in Charge,
……
Date:

Sub: Permission for ……. Puja.

Respected Sir,

I ……President of (committee/ sangha), (place name), would like to submit that our organization has decided to organize a ……. puja on 11th of this month. The puja will start on ……..day morning at 7.30 A.M Kindly grant us the permission to organize this puja and provide us with the necessary arrangements. We assure that we will abide by the rules and regulations imposed by the authorities. Therefore, I request you to permit us and request to make necessary arrangements.

Yours Sincerely,

……

1. Which among the following is not a part of a letter format?

(A) Salutation (B) complimentary close (C) the main body (D) filtration

2. Which of the following is the correct subscription in a letter to a friend?

(A)Yours's sincerely (B) You sincerely

(C) Yours sincerely (D) Your sincerely

3. The correct heading of a letter consists of

(A) The receiver's address and date. (B) The writer's address and date.

(C) The subject of the letter and date.(D) The date only.

4. The tone and style of a business letter should be:

(A) Scholarly and erudite

(B) Full of impressive similes and metaphors.

(C) Friendly and courteous

(D)Vague and abstract

5. Which of the following should the body of an official letter contain?

(A) Direct and brief statement of the purpose of correspondence.

(B) General reference to the welfare of the recipient.

(C) Enquiry about the recipient's health.

(D) Good wishes for the family of the recipient.

6. Arrange the following in proper order as are the gist of a letter:

A. Writer's name

B. The subscription

C. The writer's address and date

D. The body of the letter

E. The superscription

F. The salutation

7. A formal letter start with:

(A) Date (B) Subject

(C) Sender's address (D) Receiver's address

Example (Matter)-

With due respect, I would like to inform you on behalf of (committee name/ sangha) – (mandir name) that on (date) of this month we are going to organise …… Puja at our place. For this purpose, we need your permission to organise this event and support of yours to organise this event in a hassle-free manner without having any social trouble.

Thanking You

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं स्रोत:-

1. ऋग्वेदसंहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली
2. यजुर्वेदसहिता, डॉ. रामकृष्ण शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
3. एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ टेम्पल्स, डॉ. सी. एन. राव (तिरुमला, तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति)
4. Hindu iconography vol.1, टी. ए.गोपीनाथ राव, The law Priting House Mount road Madras.
5. शिल्परत्नम्, श्रीकुमार भार्गव प्रणीत डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी
6. बृहद्वास्तुमाला, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
7. बृहत्संहिता, डॉ. अच्युतानन्द झा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. सूत्रधारमण्डनभारद्वाज विरचितं वास्तुमण्डनम्, भाषाटीका सहितम्, श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
9. भारतीय प्रतिमा विज्ञान, डॉ.द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, वास्तुवाङ्मय प्रकाशन शाला लखनऊ
10. नित्यकर्मसमुच्चय, गीताप्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
11. भारतीय मूर्ति कला का परिचय, डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, ललितकला प्रकाशन, अलीगढ़
12. कर्मकाण्डप्रदीप, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (उ. प्र.)
13. मुहूर्तचिन्तामणि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (उ. प्र.)
14. नागर शैली के नए हिन्दू मन्दिर, श्रीनारायण चतुर्वेदी, दिल्ली प्रभात
15. व्यवहारसाहस्त्री, संस्कृतभारती प्रकाशन
16. भारतीय वास्तुकला का इतिहास, कृष्णदत्त वाजपेयी (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ)
17. देवस्थानविभाग राजस्थान-https://devasthan.rajasthan.gov.in/temple.asp
18. कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय भारत संरकार,https://www.xn--i1bj3fqcyde.xn--11b7cb3a6a.xn-
19. राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद(NCVET) https://www.ncvet.gov.in/
20. ईशावास्योपनिषद्, धनश्यामदास जालान,सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित, गीताप्रेस गोरखपुर

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in